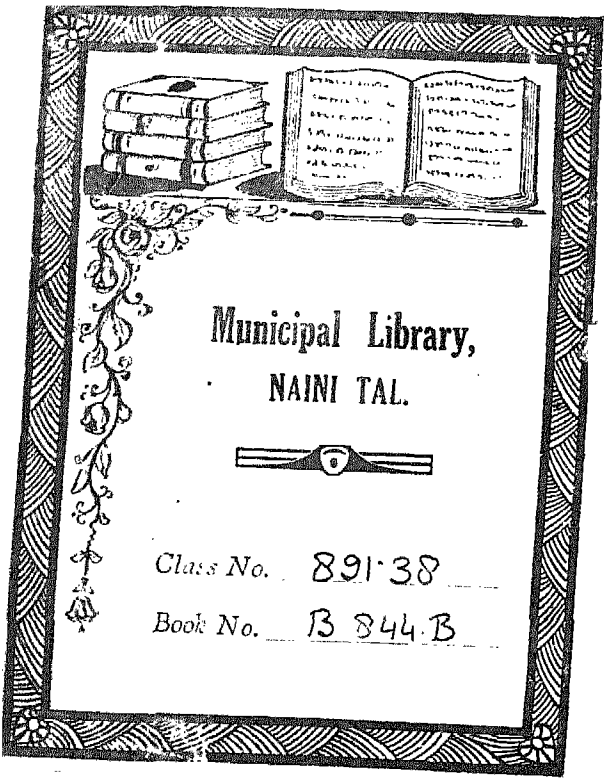
Municipal Library,
NAINI TAL.

Class No. 891.38
Book No. B 844 B

बिखरी कलियाँ

श्री ब्रजेन्द्रनाथ गौड़

की

१४ कहानियों का संग्रह

प्रकाशक

प्रगतिशील साहित्य सदन,

लखनऊ.

सोल एजेंट

शिवाजी प्रकाशन मंदिर

लखनऊ

Durga Sah Municipal Library,
Naini Tal.
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल

Class No. (विभाग) 891.38
Book No. (पुस्तक) B 844 B
Received On. Nov: 1945

प्रथम संस्करण

मूल्य १॥)

1463

मुद्रक

पं० भृगुराज भार्गव

भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स, लखनऊ

लेखक की ओर से—

प्रसन्नता की बात है कि प्रगतिशील साहित्य सदन द्वारा यह कहानियाँ प्रकाशित की जा रही हैं। लेखक को विश्वास है कि सदन के कृपालु सदस्य यह संग्रह पसन्द करेंगे। लेखक के ख़याल से प्रगतिशील साहित्य के जो अर्थ आजकल लगाए जाते हैं, वे ग़लत हैं। विदेशों की बातें, किसान-मज़दूर और 'सेक्स' की समस्याओं का विवेचन ही प्रगतिशीलता नहीं है। प्रगतिशीलता तो वह है, जिसमें जनता के हृदय में कुविचार पैदा न हों, ग़लतफ़हमी न फैले, एक दूसरे की तकलीफ़ें समझने का माद्दा हो, सब सुखी रहें—इन भावनाओं का प्रचार करना प्रत्येक लेखक का काम है और इन्हीं विचारों का प्रचार कवि तुलसीदास तक की रचनाओं में है।

इस संग्रह की कहानियाँ विभिन्न दृष्टिकोण से लिखी गई हैं। निश्चय ही इनमें से अधिकांश, पाठकों को पसन्द आयेंगी।

कीकाभाई मैन्शन,
कीका स्ट्रीट, बम्बई ४

—ब्रजेन्द्रनाथ गौड़

प्रकाशकीय—

हमें प्रसन्नता है कि सदन की पहली पुस्तक के रूप में हम, हिन्दी पाठकों के सुपरिचित श्री व्रजेन्द्रनाथ गौड़ का कहानी-संग्रह प्रकाशित कर रहे हैं। गौड़जी हिन्दी के कहानी-क्षेत्र में अपना उच्च स्थान बना चुके हैं और उनकी कहानियों का अन्य भाषाओं में भी पर्याप्त आदर हुआ है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह संग्रह पाठकों को पसन्द आयेगा और इसे अपनाकर वे हमारा उत्साह बढ़ायेंगे।

शीघ्र ही हम गौड़जी की कुछ अन्य पुस्तकें भी प्रकाशित करेंगे।

—प्रकाशक

कहानी-क्रम

	पृष्ठ
१—मुहब्बत की तालीम	१
२—सती	७
३—मानमयी निराशा	१४
४—स्तर से ऊपर	२३
५—भावुक	३४
६—सन्देह	४७
७—जीवन की गति	५८
८—सिपाही	७०
९—विराम	८२
१०—पीरू की पूजा	९३
११—मेरी ज़िंदगी	१०४
१२—जागते रहो	१०९
१३—एक शाम	११८
१४—चरस की चिलम	१२५

मुहब्बत की तालीम

'ज़िन्दगी का नाम अगर चलना है, तो मैं कहूँगा कि मुहब्बत का नाम यक़ीन है। जो ज़िन्दगी का चलना ईमानदारी और सचाई की अनवरत यात्रा है, तो मुहब्बत का यक़ीन भी पक्का और स्थिर होना चाहिए। लेकिन जिस तरह मुहब्बत का घर दिल है, उसी तरह दिल का सहारा ज़िन्दगी है। इसलिए ज़िन्दगी के चलने और मुहब्बत के यक़ीन का गहरा रिश्ता है।'—इतनी बात कह कर हमारे दोस्त ज्ञानचन्द कुछ रुके और गला साफ़ करते हुए उन्होंने मेरी ओर देखा।

मैंने कहा – 'आजकल तुम मुहब्बत की बातें जो किया करते हो इसके मानी क्या हैं?'

ज्ञानचन्द ने कहा—'बात यह है दोस्त, कि मुझे आजकल मुहब्बत करने की बीमारी सवार हो गई है और मेरी तरफ़ से यह मुहब्बत ज़िन्दगी भर रहेगी।'

मैंने पूछा कि वे आख़िर किसकी मुहब्बत में इस बुरी तरह से पागल हुए जा रहे हैं, तो उन्होंने कहा कि यह बात बताने की नहीं है, इसमें बड़ा भारी राज़ छिपा हुआ है।

मैंने पूछा—'यार, तुम हमारे पक्के दोस्त होने का दम भरते हो और हमसे ही यह बातें छिपानी शुरू कर दीं। याद रखो, अगर मुझसे कभी कुछ छिपाया तो ठीक न होगा!'

मेरी बात सुन कर ज्ञानचन्द ने कहा—'मुझ पर लगाये गये झूठे इल्ज़ाम से हमारी-तुम्हारी दोस्ती टूट कर रहेगी।'

मैंने पूछा कि मैं क्या झूठा इल्ज़ाम लगा रहा हूँ तो उन्होंने कहा—'यही कि अब जनाब यह कह रहे हैं कि हम तुमसे हर बात छिपाते हैं यानी कि मैं तुम्हारा कुछ होता ही नहीं हूँ। और यह दोस्ती इस ज़रा-सी बात पर तोड़ने के लिए मजबूर कर रहे हो।'

मैंने देखा कि ज्ञानचन्द की आँखें भर आई हैं। उनका हृदय बूँद-बूँद बनकर बाहर आना ही चाहता है, तभी मैं अपनी कुर्सी से उठकर उनके पास पहुँचा और कन्धे पर हाथ रख कर मैंने कहा—'भाई, इसमें न तो दोस्ती टूटने का सवाल है और न रोने या नाराज़ होने का। यह तो एक बात थी कि तुम आख़िर मुझसे अपनी मुहब्बत की बात क्यों छिपाते हो?'

तड़पकर ज्ञानचन्द ने कहा—'अब फिर तुम वही बात कहने लगे। मैं पूछता हूँ, मैंने इस मुहब्बत की बात को छोड़ कर और कोई बात भी तुमसे कभी छिपाई है? और यह बात भी मैं छिपा नहीं रहा हूँ, हाँ, यह है कि कुछ दिन बाद बता दूँगा।'

मैंने उनसे पूछा कि वे अभी क्यों नहीं बता देते? तो मेरी बात अन-सुनी करके, आँख मींच, लम्बी-सी साँस लेकर उन्होंने कहा—'यार, मुहब्बत भी क्या बला है? लेकिन मुहब्बत, आह! कितनी मीठी-मीठी-सी होती है यानी दिल हमेशा उसमें लीन रहना ही चाहता है, मुहब्बत के ज़र्रे-ज़र्रे में पैठ जाना चाहता है।'

मैं चुपचाप उनकी बातें सुन रहा था। वे खोये-खोये-से कहे जाते थे—'काश, यह दिल न होता!'

तभी वे चौंक कर उठे और अपने दिल पर हाथ रख मुझे देखते हुए पूछा—'दोस्त मेरे, तुम्हारे दिल में कभी ऐसी टीस उठा करती है?'

मैंने पूछा कि कैसी टीस? तो उन्होंने फिर गहरी साँस ली और कहा—'ऐसी ही, जैसी इस वक़्त मेरे दिल में उठ रही है।'

मैंने पूछा तुम्हारे दिल में कैसी टीस उठ रही है ? तो उन्होंने दिल से हाथ हटा कर छत की ओर देखा और सिर को कुर्सी पर लटकाते हुए कहा—'ऐसी, जैसे पुराने फोड़े में मवाद पड़ जाता है। फबक-फबक होता है, मानो लालटेन की बत्ती भक-भक कर रही हो।'

मैंने सोचा कि यह भी अजीब ढङ्ग के आदमी हैं, अजीब तरह की बातें करते हैं। फोड़े का मवाद, लालटेन की बत्ती और दिल की टीस—क्या साथ जोड़ा है मेरे दोस्त ने।

वे कह रहे थे—'ऐसा लगता है जैसे तूफ़ान आने के आसार हों।'

इस बार मैं अपने को रोक न सका। ज़ोर से हँस पड़ा तो उन्होंने आँखें खोल आश्चर्य से मेरी ओर देखकर पूछा—'क्यों भाई, क्या मेरे मुँह से कोई ऐसी बात निकल गई जो बेहूदा कही जा सकती है ?'

मैंने कहा—'नहीं।'

उन्होंने कहा—'फिर हँसे क्यों ?'

मैंने कहा—'एक ऐसी ही बात याद आ गई थी।'

ख़ैर साहब, ज्ञानचन्द ने मुझसे पूछा कि क्या मेरे दिल में भी ऐसा होता है ? तो मैंने कहा कि नहीं।

उन्होंने कहा—'मैं समझ गया ! तुम्हारे सीने में दिल है ही नहीं, अगर होता तो ज़रूर उसमें दर्द हुआ करता।'

मैंने कहा कि दिल तो है, पर मुहब्बत किसी से की नहीं, इसलिए यह दर्द-वर्द नहीं उठता।

वे बोले—'ठीक है, तुम्हारी कमज़ोरी समझ गया हूँ। और अब मैं तुम्हें यह सलाह देता हूँ कि तुम जल्द ही किसी से मुहब्बत करना शुरू करो, वर्ना दिल की धड़कन बन्द हो जावेगी।'

मैंने पूछा कि आख़िर मैं किससे मुहब्बत करूँ ? तो वे बोले—'चाहे किसी से भी कर लो। मतलब यह है कि हर आदमी को किसी न किसी से मुहब्बत करना ही चाहिए, चाहे किसी से करे !'

मैंने कहा कि आख़िर किस तरह मुहब्बत की जाय, तो उन्होंने फ़रमाया—'अब जैसे तुम कहीं जा रहे हो, रास्ते में तुमने किसी लड़की को देखा और तुम्हारी तबीयत हुई कि वह तुमसे बात करे, बस इसी का नाम मुहब्बत है।'

मैंने कहा—'भाई इस तरह सोचने से ही तो काम बनेगा नहीं!'

वे बोले—'पहले मेरी बात भी तो पूरी सुन लो।'

मैंने कहा—'अच्छा, पहले पूरी बात कह लो।'

उन्होंने बड़े इत्मीनान से कहा—'हाँ, तो अब जो तुमने किसी लड़की को देखा और जी चाहा कि वह तुमसे बात करे तो इसके मानी यह हुए कि तुम्हारी तरफ़ से मुहब्बत शुरू हो गई है। अब सवाल यह उठता है कि वह किस तरह यह समझे कि अब तुम उसकी मुहब्बत में पागल हो रहे हो? इसके लिए सहल तरकीब यह है कि तुम अपनी जेब में कुछ चिट्ठियाँ इस तरह की लिख रखो कि गोया ख़ास उसी के लिए समझी जायँ जिसे कि तुमने देखा है।'

मैं मन ही मन उनकी बातों पर हँस रहा था; लेकिन उनकी बातें सुनने की इच्छा थी, इसलिए कहा कि आख़िर चिट्ठी का मज़मून क्या होना चाहिए! इस पर उन्होंने समझाने के ढंग पर कहा—'मज़मून का मतलब यही हो कि जिस तरह भी हो उसमें अपनी दिली मुहब्बत का इज़हार करो। यानी लिखो कि तुमने उन्हें देखा है, और उनकी मुहब्बत में बेक़रार हो रहे हो।'

मैंने पूछा—'तब?'

ज्ञानचन्द बोले—'सुनते जाओ! हाँ, तो मुहब्बत के पैग़ाम का मज़मून तो यह हो गया। अब सवाल यह है कि यह पैग़ाम उन तक भेजा किस तरह जाय? इसके लिए सहल तरकीब यह है कि अगर तुम उन्हें मोटर में या मकान की खिड़की में देखो तब तो यह ख़त आसानी से उन्हें दे सकते हो; अगर राह चलते देखो तो कहो कि मुझे आपसे एक

बात कहनी है, और जब वे पास आयें तो ख़त देकर रफूचक्कर हो जाओ। एक ख़याल हमेशा रखो कि यह सब एकान्त जगह में हो, जहाँ देखने वाले ज़्यादा न हों और भागने के लिए हमेशा मुस्तैद रहो। यानी कभी-कभी ऐसा मौक़ा भी आ जाता है कि डाट-फटकार के सिवाय पिटने की भी नौबत आ जाती है। तो उस मौक़े के लिए तैयार रहना पहला फ़र्ज़ है।'

मैंने घबड़ा कर कहा—'भाई, मैं इज़्ज़तदार आदमी हूँ। यह काम तो मुझसे न होगा।'

उन्होंने समझाने के तरीक़े पर कहा—'मुहब्बत ऐसी-वैसी चीज़ तो है नहीं भाई! जान-जोखिम का काम है। लेकिन असली मुहब्बत तो यही है।'

मैं कुछ कहनेवाला ही था कि उन्होंने कहा—'तुमने लैला-मजनूँ या शीरीं-फ़रहाद का नाम तो सुना ही होगा। भई, क्या जीती-जागती मिशाल है मुहब्बत की! यानी कि अब यह समझो कि इस मुहब्बत ने उन्हें कैसा परेशान किया था। हाँ, और जो तुम इज़्ज़त की बात कहते हो, तो मैं भी कम इज़्ज़तदार नहीं हूँ। लेकिन जनाब, रात-दिन बस यही स्कीमें बनती रहती हैं कि किसे किस तरह मुहब्बत का पैग़ाम भेजा जाय।'

मैंने पूछा कि क्या उन्हें भी कभी गाली-गुफ़्ता सुनने का मौक़ा मिला है! तो उन्होंने बड़ी ज़िन्दादिली से फ़रमाया—'गाली-गुफ़्ता क्या जनाब, मेरे सामने तो ऐसे-ऐसे मौक़े आये कि अब मैं क्या बयान करूँ!'

मैं समझ गया था कि उनके सामने क्या-क्या मौक़े आये होंगे।

कुछ रुक कर उन्होंने अपनी जेब से एक फ़ोटो निकाल कर मेरी ओर बढ़ाया। उसमें एक भड़भूजिन अपनी दूकान पर बैठी कुछ तौल रही थी। भड़भूजिन का नाक-नक़्शा भी कुछ अच्छा न था, रङ्ग भी

काला था। ज्ञानचन्द ने बड़ी अदा से पूछा—'भई, इसके बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है ?'

मैंने पूछा—'कैसा ख्याल ?'

उन्होंने बतलाया कि वे आजकल उसी की मुहब्बत में मुब्तिला हो रहे हैं।

अब तो मेरी हँसी न रुकी, जी खोल कर हँसा, तो उन्होंने ताज्जुब से कहा—'जनाब, आप हँसते हैं; लेकिन यहाँ यह हाल है कि इनकी मुहब्बत में बेक़रार हो रहे हैं। यानी रात-रात भर इस तरह तड़पते रहते हैं कि जिस तरह परकटा कबूतर या बिना पानी के मछली तड़पती है।'

उसी वक़्त एक आश्चर्यजनक घटना यह घटी कि ज्ञानचन्द की श्रीमतीजी ने कमरे में आकर मेरे हाथ से फ़ोटो छीन कर फाड़ दिया और ज्ञानचन्द से कहा—'यह रात-दिन मुहब्बत-मुहब्बत हुआ करती है ! यह परकटे कबूतरों की तरह तड़पा जाता है, और दूसरों को भी यही तालीम दी जाती है। मैं कहती हूँ, तुम ब्याहे आदमी हो और इस तरह की बातें करते शर्म नहीं आती !'

मैं घबरा रहा था कि कहीं अगला वार मुझ पर ही न हो जाय, तभी ज्ञानचन्द ने भीगी बिल्ली की तरह दब कर धीरे से कहा—'कुछ नहीं, यों ही एक दोस्त के बारे में···!'

बात काटकर उनकी पत्नी बोलीं—'मैं सब सुन रही थी। मुझसे तुम्हारी चालाकी नहीं चल सकती !'

मौक़ा आया देख मैं वहाँ से खिसक आया। पता नहीं उन पर क्या बीती होगी। लेकिन मुझसे उनकी मुहब्बत की बेक़रारी और उनके द्वारा दी गई मुहब्बत की तालीम की बात सोच कर हँसी रोके नहीं रुकती।

सती

सावन की बादलों भरी साँझ क्षितिज के किनारों पर उतर गयी थी और गाँव का वातावरण धुँधला हो गया था। जिस चाँद की रोशनी में ज़मीन का चप्पा चप्पा पारे की नदियों से नहा जाता है, उस चाँद के दिखाई देने का कोई आसार न था। गाँव के पास की अमराई में लड़कियाँ झूलों पर पेंगें लेती हुई कजली गा रही थीं। मचान पर बैठा हुआ युवक मेघ मल्हार की धुन टेर रहा था और दूर कहीं से हृदय को लुभानेवाली कोयल की कूक गाँव की सीमा लाँघकर घर-घर के धुँधले कानों में सिहरन पैदा करती हुई पछुआ के झोंकों के साथ उड़ी जा रही थी। हलकी हलकी फुहारें पड़ रही थीं। शरीर के रोयें कँपकँपी पैदा कर रहे थे। ढोरों को चराकर नदी किनारे से गाँव के बालक लौट आये थे। पीपल के पत्ते और नीम की शाखें हवा के झोंकों में लहरा रही थीं। छप्परों के नीचे और कच्चे मकानों में साँझ की दिया-बत्ती हो गई थी। बैलों के गलों में बँधी हुई घंटियों की झनझनाहट चौपाल के पास सुनाई पड़ने लगती थी। शहर से गाड़ीवाले लौट रहे थे। मन्दिर के पास बैठा कोई रसिया विरहा गाने लगा था। गली में कीचड़ था और कीचड़ में गाड़ियों के पहियों की लकीरें बूढ़े माथे की रेखाओं सी लग रही थीं। झुर्रियोंदार पुराने घरों की दीवारों पर पानी की बूँदें लम्बी-लम्बी और उभरी उभरी लकीरें बना रही थीं, जैसे बीते दिनों का दर्द भरा इतिहास अपने आँसुओं से लिख रही हों।

एक गाड़ी तेज़ी से भागती हुई गाँव की ओर आ रही थी। खड़-खड़ की आवाज़ और बैलों की घण्टियाँ गाँव के शोरोगुल में मिलकर गीली और कच्ची सड़क पर एक भद्दा और उखड़ा-उखड़ा वातावरण पैदा कर रही थीं। गाड़ी की आवाज़ सुनकर चौपाल में बैठे सभी लोग गाना बजाना छोड़ उधर देखने लगे। कुछ ही देर बाद गाड़ी आकर झन्न से चौपाल के सामने खड़ी होगई और भरोसे छलाँग मार नीचे कूद आया। खादी के मोटे कुरते में से उसका सुगठित शरीर झलक रहा था और आस्तीनों पर मांसपेशियाँ उभरी पड़ती थीं। चेहरा चमक रहा था और छोटी छोटी मूँछें फड़क रही थीं।

भरोसे ने चौपाल के छप्पर में आकर सब लोगों पर एक नज़र डाली। गाड़ी में किसी की चूड़ियाँ झनझना उठीं। बैलों के हाँफने की आवाज़ आ रही थी।

चौपाल में उपस्थित जन भरोसे की ओर कुछ सुनने की आशा से मुँह उठाए देख रहे थे। चौधरी पीढ़े पर बैठे हुक्का पी रहे थे। देखने में अधेड़ थे, लेकिन बुजुर्गियत उनके चेहरे से टपक रही थी। भरोसे पर एक नज़र डालकर चौधरी ने पूछा, 'क्या है रे……?'

भरोसे ने उत्साह से सीना फुलाकर कहा—'लाठी चलेगी दादा!'

जो सात आठ व्यक्ति वहाँ बैठे थे, भरोसे की बात सुनकर चौंक पड़े। चौधरी ने कहा लाठी क्यों चलेगी बेटा?'

गोपाल उठा, हट्टा-कट्टा जवाँ-मर्द गोपाल भरोसे का गहरा दोस्त है। पास आकर भरोसे के कंधे पर थपथपा कर बोला—'भगा लाये क्या।'

भरोसे ने हौले से सिर हिलाकर स्वीकार किया। गोपाल ने चौधरी की ओर मुँह करके कहा—'लाठी चलेगी दादा! लाठी चलेगी!! कोई नहीं रोक सकता।'

चौधरी ने कहा—'लेकिन मालूम तो हो क्यों चलेगी लाठी?'

'नदी पार के गाँव से चम्पा उठा को लाया है !' गोपाल ने जैसे भरोसे को दाद देने के लिए कहा।

चौधरी मुस्कराये, क्षणभर को सामने बैठे लोगों की तरफ़ देखा। गोपाल को देखा, वह मूँछ पर ताव दे रहा है। भरोसे को देखा कि उसकी आँखों में उत्साह है और वह उत्साह बता रहा है कि भरोसे पीछे न हटेगा। कहा – 'सुन तो बहुत दिन से रहा था, आज बात सच भी हो गई। लेकिन बेटा, जिसकी लौंडिया को उठा लाये हो, वह मामूली आदमी नहीं है, नदी पार के गाँव का ठाकुर है, शहर की कचहरी में भी उसकी तूती बोलती है। सो कुछ सोचा है ?'

'सोच लिया है दादा ?' इत्मीनान के साथ भरोसे ने कहा।

'तीन चार साल के लिये जेल जाओगे इसके लिये भी तैयार हो !' चौधरी ने मुस्कराकर कहा।

'तीन साल को क्यों जाऊँ दादा ! चार को मार कर फाँसी पर झूलने को तैयार हूँ मैं तो।' भरोसे ने नपे तुले शब्दों में सीना तान के अपनी बात कह दी।

'अच्छा तो जा। बहू अकेली गाड़ी में बैठी है, घर जा और बे-फ़िक्र होके बैठ। जो होगा सो देख लेंगे।' चौधरी ने फिर उसी सहज सुलभ मुस्कराहट से भरोसे की ओर देखकर कहा।

सर झुकाकर भरोसे बाहर चला गया। छप्पर में बैठकर लोग कानाफूसी करने लगे। गोपाल भी भरोसे के पीछे पीछे चल दिया।

चौधरी ने कहा—'आनेवाला छोकरा है—जवानी के दिनों में भी आन की बात न सोचेगे तो क्या हमारी तरह जनम भर अकेला रहेगा।' फिर मुस्कराकर हुक्का पीने लगे।

* * *

भरोसे जानता है कि चम्पा कैसी सुन्दरी है उसके एक एक रोम पर एक एक भाव पर हजार हजार भरोसे कुरबान हो जाँय तब भी कम है ! पर साल दशहरे के मेले में दोनों ने एक दूसरे को देखा था। प्रेम का बीज

तभी पड़ गया था। आकर्षण का भाव बढ़ता ही गया। दोनों का मन एक दूसरे की ओर खिंचता ही गया, दुखिया चम्पा को जैसे भगवान ने सहारा दे दिया हो। बाप गाँव का जमींदार है। जात का ठाकुर है। बेटी सोलह साल की उमर पार कर गयी। जवानी सीमा को छूने लगी, लेकिन उसे उसके ब्याह की चिन्ता न हुई। पचास साल की उमर में अपना ब्याह कर लिया, एक नई नवेली से। तथा चम्पा अपनी माँ की याद करके रह गई। नई पत्नी के आग्रह और 'त्रिया-चरित्र' ने ठाकुर को मजबूर किया और वह चम्पा के साथ अच्छा बरताव न कर सका। नई पत्नी का प्रभाव घर में हो गया। चम्पा का जीना दूभर था। ऐसे में उसे भरोसे रोज़ नदी पार करके साँझ गए चम्पा से मिलने आता था। जवान चम्पा पर एक दिन ठाकुर के सख्त और मज़बूत हाथों से बेंतों की मार पड़ी थी।

दोनों गाँवों में चम्पा और भरोसे की प्रेम-कहानी प्रसिद्ध हो रही थी। ठाकुर तैयार होता तो, दोनों की विधिवत शादी हो सकती थी, लेकिन वैसा न हो सका। दोनों ने भगने की बात पक्की की और चम्पा भरोसे के साथ ऐसे उड़ आई जैसे क़ैद से पंछी उड़ जाता है। वह तन मन से भरोसे की कृतज्ञ है और जीवन भर रहेगी। लोक-लाज, मान-अपमान को तिलांजलि देकर वह किस बूते पर अपने बाप का घर छोड़ आई है यह भी भरोसे ही जानता है।

गोपाल ने दही पेड़े का दोना उसके सामने रखकर कहा 'खाओ भाभी। मैं तो न जाने कब से तुम्हारी राह देख रहा था, लेकिन ये भरोसे बुजदिल है कि तुम्हें लाते लाते साल भर लगा दिया।"

चम्पा मुस्कराई। ओढ़नी में से उसका मुस्कराना गोपाल ने देख लिया। भरोसे ने कहा—'तुझे भाभी की बड़ी फ़िक्र है। गोपाल तू अब जा। मैं खिला पिला दूंगा।'

गोपाल ने कहा—'मैं तो जा ही रहा हूँ, लेकिन भाभी तुम बेफ़िक्र

रहना, सौ सौ कोस तक इस गाँव की लाठी का डंका बजता है, किसी की मजाल है कि कुछ कह जाये। कल इसी गाँव में भरोसे के साथ तुम्हारी भाँवरें पड़ेंगी और सुन लो कि कन्यादान चौधरी ही करेंगे।' इतना कहकर गोपाल हँसता चला गया।

अभी घरों में बच्चे खेल रहे थे, औरतें खाना-पीना कर रही थीं, कोहरा छा गया था, पानी बरस रहा था, कोई एक पहर रात बीत पाई होगी कि नदी पार से चार घुड़-सवार चौपाल के सामने आ खड़े हुए। गोपाल वहीं छप्पर में बैठा था। गाना बजाना बन्द पड़ा था। चम्पा और भरोसे की चर्चा के साथ आगे की योजना तैयार की जा रही थी। चौधरी ने उधर देखा और अपने आदमियों को हाथ से इशारा किया कि चुप रहें।

चौधरी खुद अकेले बाहर निकले। घुड़-सवार हाथों में मोटी लाठियाँ लिये थे, जो अन्धेरा होने पर भी चमक रही थीं। चौधरी के पीछे-पीछे गोपाल भी आया और सब लोग छप्पर के अगले भाग में आ खड़े हुए।

शान्त भाव से चौधरी ने घुड़-सवारों के पास जाकर पूछा—'क्या बात है?'

जवाब में एक आदमी की लाठी हवा में उठी और जब तक चौधरी बचने की कोशिश करें या गोपाल बीच में जाकर लाठी का वार अपने हाथ पर रोके, चौधरी के सर पर लाठी पड़ी और खोपड़ी खिल गई। चौधरी चीख़ कर गिरे। गोपाल ने सवार की टाँग पकड़ ली कि खींच लें, दूसरे सवार ने उस पर वार किया कि छप्पर में से सब लोग निकल आये गोपाल बाल बाल बचा। किसी ने घोड़े की पीठ पर लाठी जमा दी थी और वह एक ओर भाग गया था। इसी नदी के किनारे से ज़ोर के शोर की आवाज़ आई। उन लोगों ने समझ लिया कि सौ पचास लठैत ठाकुर की तरफ़ से आ रहे हैं। बेहाल चौधरी के शरीर को चौपाल में ले जाकर

1963

दो आदमियों ने रख दिया था और इनके सर का ख़ून बहने से रोकने की कोशिश कर रहे थे।

गोपाल ने चिंघाड़ कर ज़ोर से एक आवाज लगाई लाठी···लाठी··· ।

गोपाल के साथ ही बाक़ी आदमी चिल्ला पड़े।

गाँव भर में हल्ला मच गया। बूढ़े, जवान और अधेड़ लाठियाँ लेकर घरों से बाहर निकल आये। चौपाल के सामने दोनों तरफ़ के जवान इकट्ठे हो गये और जमकर लाठी चलने लगी। लोगों का भागना, आहें भरना, गिरना और शोर गुल सावन की रात की नीरवता और भावुकता को ख़त्म कर चुका था।

भरोसे चम्पा को झटपट लाला के घर पहुँचा आया, चम्पा ने बहुत रोका, पर वह न रुका। चम्पा ख़ुद लाला के घर की स्त्रियों के आगे घूँघट काढ़े रही और भरोसे चला गया।

शोर धीरे धीरे बढ़ता जा रहा था।

अब चौपाल के पीछे, नदी किनारे के खुले मैदान में दोनों ओर से लाठियाँ चल रही थीं। गोपाल ने देखा कि भरोसे लाठी घुमाता तेज़ी से उसी ओर चला आ रहा है। गोपाल वहीं से बोला—'लौट जाओ भरोसे, लेकिन वह आगे बढ़ रहा था। घूमकर ज्योंही उसने भरोसे को रोकना चाहा कि उसके विरोधी की लाठी उसके सर पर भच से पड़ी और वह 'आह' करके धराशायी हो गया। क्रोध से तिलमिलाता हुआ भरोसे प्रहार करने के लिए आगे बढ़ा कि कुछ फ़ासले पर पेड़ के नीचे खड़े एक घुड़सवार की बन्दूक़ से चिनगारी निकली, धमाके की एक गगन-भेदी आवाज़ हुई और एक चीख़ मारकर भरोसे उछल पड़ा, फिर तत्काल ही कटे वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर गिर कर लोटने लगा—तब कुछ क्षण बाद उसकी देह शान्त हो गई।

बन्दूक़ चलानेवाला सवार, नदी पार का ज़मींदार, चम्पा का पिता था।

हवा की तरह पलक झपते लाला के यहाँ यह ख़बर पहुँची। स्त्रियों ने बहुत छिपाना चाहा, पर चम्पा ने सुन ही लिया। वह गला फाड़कर चीख़ी—'हाय, मोरे राजा।'

स्त्रियों की पकड़ से बाहर होकर वह कुएँ में कूद पड़ी। जब तक कुछ लोग आए और चम्पा को कुएँ से निकाला, तब तक उसके प्राण भरोसे की आत्मा से जा मिले थे।

आसमान पर सुबह की सफ़ेदी छाई हुई थी और गाँव में रुदन का देवता अट्टहास कर रहा था कि पलभर प्रितम के घर रहने के बाद एक युवती सती हो गई।

मानमयी निराशा

पूरी नौ युवतियाँ थीं। रंग-विरंगी साड़ियाँ, सड़क पर दूर से आने-वाले राहगीरों को आकर्षित कर रही थीं। लोग ताँगों और रिक्शों में से झाँककर देख लेते थे। किन्तु ये युवतियाँ अपनी स्थिर गति से बिना किसी ओर विशेष ध्यान दिये, आपस में बातें करते हुए, चली जा रही थीं। दूकानदार और ख़रीदार एक छिटकती नज़र इन युवतियों पर डाल लेते थे और फिर कोई-कोई परिचित व्यक्ति इनके बारे में दो बातें करके, कुछ विचलित से होकर अपनी राह लेते थे।

बंकिम ने चौराहे पर तिवारी का साथ छोड़ दिया और रिक्शे पर बैठ, सिगरेट जला, एक कश लेने के बाद, जब हाथ से चेहरे पर चमकते पसीने को पोंछकर, बालों को माथे से ऊपर उठा दिया तो रिक्शा आगे बढ़ गया था और दाईं ओर एकदम नज़दीक से वे युवतियाँ आगे बढ़ रही थीं। इसी थोड़ी-सी देर में जिन दो-तीन युवतियों पर बंकिम की नज़र पड़ी, उसने उन्हें अपनी ओर देखते पाया। कमलिनी की बड़ी-बड़ी मतवाली आँखें भी उसकी उड़ती नज़र से बच न सकीं—उन आँखों की मादकता, व्यथा और अतृप्त पर विचार करता हुआ, सिगरेट के कश लेता, शान्त-भाव से रिक्शे पर बैठा, वह घर पहुँचा किन्तु रिक्शे को दो मिनट रुकने के लिये कहकर, वह एक ही मिनट में पुनः वापस आया और रिक्शे पर बैठकर अमीनाबाद चलने को कहा।

तिवारी को आश्चर्य हुआ कि बंकिम इतनी जल्दी कैसे वापस आ गया ? वह भोजन करने की तय्यारी में था, किन्तु बंकिम के आने के कारण उसने भोजन करने का विचार त्याग दिया और उसके साथ रिक्शे पर बैठकर अमीनाबाद आया।

बंकिम बोला—'उन्हें देखा था तुमने ?'

तिवारी—'हाँ, मैंने तुम्हें आवाज़ भी दी थी, पर तुम्हारा रिक्शा आगे निकल गया था।'

बंकिम ने पूछा—'कौन कौन था ?'

'कमलिनी, फूल, दया और कई दूसरी लड़कियाँ थीं—शायद कमलिनी की क्लासफ़ैलोज और उसकी बेटी भी थी।'

बंकिम मुस्कराकर बोला—'लेकिन यह काफ़िला गया कहाँ है आज ?'

'कमलिनी ने अपनी सहेलियों को आज एक दावत दी थी, उसी सिलसिले में शायद सिनेमा वग़ैरह का प्रोग्राम हो।'

'ऐसा !'

'मेरा तो यही ख्याल है।'

'आओ, तो हम भी चलें, ज़रा पास से देखना हो जायगा।'

'अरे, टाल जाओ।'

'नहीं यार चलेंगे।' और बंकिम ने रिक्शेवाले से कहा कि जगत सिनेमा चले—फिर तिवारी से बोला—'शायद वहीं गई होंगी।'

लेकिन रास्ते में एक दोस्त ने कहा—'बंकिम, सारसों का एक रंगीन काफ़ला कैसरबाग़ की ओर गया है।'

अलफ़िंस्टन और निशात में भी सरसों का वह काफ़ला नहीं दिखाई पड़ा। तिवारी ने कहा—'शायद शर्माजी की कोठी पर गई हों।'

रिक्शा उसी ओर घुमवाया। तिवारी बोला—'बेकार परेशान होते हो—आख़िर देख लेने भर से क्या फ़ायदा।'

बंकिम ने कहा—'कुछ नहीं यों ही। लेकिन ये शर्माजी कौन हैं?'

'इंजीनियर, दया का मौसा!'

लेकिन यहाँ भी निराश होना पड़ा। शर्माजी की कोठी के सामने कुछ भी चहल-पहल नहीं थी और ऐसा कोई भी चिह्न मौजूद न था, जिससे यह अनुमान लगाया जाता कि वे युवतियाँ वहाँ आई हैं। अंदर रेडियो बजता होता, नौकर इधर-उधर दौड़ता दिखाई देता या हँसी के फ़व्वारों की आवाज़ सुनाई पड़ती तो यक़ीन होता कि वे अंदर हैं।

अचानक बंकिम को ख्याल आया कि आजकल एक डान्स पार्टी एम्बेसेडर हाल में नृत्य प्रदर्शन कर रही है। उसी क्षण उसने रिक्शे-वाले से हज़रतगंज चलने को कहा। उसे ज्ञात है खुद नृत्यकारिणी कमलिनी नृत्य के प्रोग्राम छोड़ नहीं सकती। तिवारी को समय की यह बर्बादी अखर रही थी। लेकिन बंकिम का साथ बीच ही में कैसे छोड़ देता।

रिक्शा म्यूज़िक कालेज की ओर से हज़रतगंज की ओर बढ़ा जा रहा था। बंकिम सोच रहा था कि वह कहाँ जा रहा है और क्यों जा रहा है। उसके हृदय ने जवाब दिया कि वह उन युवनियों में से एक की उन आँखों को देखने की लालसा रखता है, जिनके आकर्षण से मुक्ति नहीं मिल सकी है। उन आँखों के रस की अनुभूति में वह कई बार डूबा है और डूबे रहना चाहता है। वह शान्त, स्निग्ध और मोहक भावभंगिमा उसके मन में झंकृत होती रहती है और वह उस झनकार के एक एक स्वर को पकड़ने की कोशिश किया करता है। वह इस बात को जानना चाहता है कि वह रतनारी आँखों वाली युवती अपने मन में कौन सा तूफ़ान छिपाये हुए है? कौन सा लोरी गीत उस मन में भावनाओं को भुलाया करता है? कौन है जो उस प्रीत भरे मन से दूर हट गया है? किस दर्द ने, किस विरह-वेदना ने उसकी आँखों में इतनी आतृप्ति, इतनी कसक भर दी है? किस कठोर ने उस मतवाली के चंचल गात

का नशा छीन लिया है कि वह उसकी खुमारी के भार को सहन नहीं कर पाती ?

'एम्बसेडर' में पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि डान्स का मैटनी शो नहीं है। थोड़ी आशा और थी—बंकिम ने हज़रतगंज के प्रत्येक सिनेमा घर में भी पता लगाया लेकिन सारसों का वह काफ़िला कहीं न था। बंकिम सोचने लगा कि वे सब अपनी सहेली के यहाँ गई हैं। किन्तु किस रास्ते से कि बंकिम के आधा शहर छान मारने पर भी उसके दर्शन नहीं हुए। एकदम निराश होकर तिवारी के साथ काफी हाउस में जा बैठा। कुछ परिचित मिल गये। उनसे तिवारी ने पूछा—

'क्यों भाई, किसी ने सारसों के एक काफ़िले को देखा है ?' बंकिम ने तिवारी को बीच ही में टोककर कहा—'क्या सारस सारस लगा रक्खा है। आपको अगर ईमानदारी ही बरतनी हो तो आप रङ्गीन सारसों का काफ़िला कह सकते हैं।'

उसकी बात पर सब लोग हँस पड़े।

बंकिम को नहीं मालूम कि कमलिनी के मनभरे अभिनय की ओट में एक स्वच्छ, कोमल, भावुक और पवित्र हृदय भी छिपा है। उसे नहीं मालूम कि फ़ैशन-परस्त उस युवती का भावुक मन कितना सादा है। उसे नहीं ज्ञात कि अहंकार भरी भाव-भंगिमा व्यक्त करनेवाली इस रूप लावण्यमयी नारी का हृदय समर्पण करने की शक्ति भी रखता है और साथ ही बंकिम इस बात की भी जानकारी नहीं रखता कि चुस्त और भड़कीले कपड़े पहननेवाली यह हसीना अपने दिल में जज़बातों का जो बवंडर छिपाए बैठी है, उसे उसने किसी के सामने ज़ाहिर करने की कोशिश क्यों नहीं की।

यह बंकिम की बदक़िस्मती हो या ख़ुशक़िस्मती कि उसने कोकशास्त्र नहीं पढ़ा; फिर भी अपने मित्रों और परिचितों से उसने उसकी कुछ बातें सुनी हैं और उन्हीं के आधार पर कुछ बातों का अनुमान भी लगा

लिया है और वह इस निर्णय पर पहुँच गया है कि पद्मिनी स्त्री में जो गुण, जो विशेषतायें होती हैं, वे सभी कमलिनी में विद्यमान हैं। रूप, यौवन, मादकता, शरीरसौष्ठव, भाव-भंगिमा, चाल-ढाल सभी कुछ उसमें हैं; किन्तु बंकिम को अभी तक इस बात का ज्ञान नहीं हुआ कि क्या पद्मिनी स्त्री मानिनी भी होती है और यदि मानिनी नहीं होती तो क्या उसे यह बात रुचिकर प्रतीत होती है कि युवक उसकी ओर ललचाई आँखों से देखें और यदा-कदा उसकी प्रशंसा करें ? अथवा प्रशंसा करनेवालों को वह इतना जलाए-कलपाए कि प्रशंसा चर्चा का विषय हो जाए और तब वह स्त्री अपने परिचितों से उसकी भावनाओं का प्रतिकार दिलाए कि उनका अपमान हो।

वह आगा-पीछा सोचने पर भी बंकिम यह नहीं समझ पाता कि पद्मिनी स्त्री की भावनाएँ कैसी होती हैं और किन कारणों से वह अस्थिर प्रकृति हुआ करती है ? कमलिनी को सर पाँव तक, कभी-कभी देख भर लेने के बाद वह सोचता है कि उसके लिये पद्मा नाम कितना उपयुक्त होता ! किन्तु जब वह उसके संबंध की अनेक घटनाएँ, चर्चाएँ सुनता है, तब वह सोचने लगता है कि कमलिनी हृदय से जैसी है, यानी जैसा कि उसके हृदय को अन्य लोग समझते हैं, उसे शंखिनी स्त्री कहलाने का श्रेय प्राप्त हो जाता है। यहीं वह फिर सहम जाता है और अपने मस्तिष्क में टकरानेवाले दो विरोधी विचारों के बाँध को तोड़ने की कोशिश करने लगता है। कमलिनी की आँखों में झाँककर उसके संबंध में वह जो विचार करता है, वह अन्य लोगों द्वारा सुनी बातों से एकदम भिन्न होता है। इस स्थान पर केवल एक अपना उसे सहलाने लगती है और वह यह कि कमलिनी का दायरा ग़लत और अस्थिर व्यक्तियों की सीमा के बाहर तक नहीं है।

संभवतः अपने हृदय में छाई हुई घोर नीरवता, निराशा और एकान्त को छिपाने के लिये वह बाह्य जगत को अपनी ओर समेटने का प्रयत्न

करती हो और इस कार्य में सफलता न मिलने के कारण उसकी भावनाएँ विद्रोह करने लगती हों। यह भी संभव है कि बंकिम का यह सोचना उसकी कमज़ोरी हो। वह जानता है कि नारी के प्रति पुरुष के हृदय में जो भाव होते हैं, वे उस समय बड़े विकृत हो जाते हैं, जब नारी पुरुष को खिलौना समझने लगती है, और रूपगर्विता होकर पुरुष की भावनाओं को चुनौती देती हुई उसके सामने से निकल जाती है। अनुभवहीन पुरुष उस समय सहम कर रह जाता है और उसकी ओछी प्रकृति का परिचय देने के लिये नारीत्व को इच्छाओं के तराज़ू पर तोलने का संकल्प कर लेता है। बंकिम अनुभव करता है कि यहीं पर पुरुष अनजाने ही अपनी हार स्वीकार कर लेता है और कमलिनी जैसी नारी प्यास को छिपाकर, प्यार को दबाकर और अरमानों को मिटाकर विद्रोहिणी हो जाती है। इस विद्रोह के वास्तविक रूप की कल्पना बंकिम नहीं कर पाता।

बंकिम की कमलिनी के प्रति जो दिलचस्पी है, उसका कारण उसका रूप-लावण्य, उसके संबंध की चर्चाएँ, घटनाएँ अथवा उसका अहंकार और शिक्षा कदापि नहीं है बल्कि उसके साथ रहनेवाली उसकी सहपाठिनी दया है, जिसके संबंध में कमलिनी के परिचित भी बहुत कम चर्चा करते हैं—किन्तु दया के बारे में कुछ भी सोचने की इच्छा उसे नहीं होती, क्योंकि उसमें ऐसा कुछ भी नहीं जिस पर सोच विचार किया जाये। हाँ, वह जानता है कि जिस दिन दया उसके मन की बात जान लेगी, उस दिन दोनों में प्रथम परिचय होगा। उस दिन से वह उसके विचारों में छाई रहेगी, किन्तु अभी उसके परिचितों की विचारधारा उसकी भावनाओं पर छाई रहती है और कभी-कभी वह बहुत देर तक कमलिनी के बारे में ही सोचा करता है। कभी वह अपनी नादानी को देखकर सोचता है कि आख़िर उसे कमलिनी के बारे में सोचने का अधिकार ही क्या है, और उसे उसके संबंध में ऐसा क्या स्थिर करना है जिसकी

उसे आवश्यकता है ? तब उसकी विचारतंत्री का तार झनझना कर टूट जाता है और वह अनुभव करता है कि अभी वह बहुत अस्थिर है। जीवन के लिये जिस गम्भीरता की उसे ज़रूरत है, वह अभी उसमें बहुत कम अंशों में है ।

वह शायद जीवन भर कमलिनी के मन का रहस्य न समझ सकेगा और शायद प्रत्यक्ष रूप में कभी दया से उसका परिचय न होगा।

दूसरे दिन बंकिम को ज्ञात हुआ कि कमलिनी और उसकी सहेलियाँ जगत सिनेमा में ही थीं और उन सबने पूरा शो भी देखा था। बंकिम को बड़ा वैसा लगा।

* * *

कहानी लेखक बंकिम के बारे में कुछ नहीं कहना चाहता। जीवन के केन्द्र-बिन्दु पर पहुँचने से पहले युवक की विचारधारा अस्थिर होती है और वह इसी तरह की बातें सोचा करता है। किन्तु वह बंकिम के सवालों का जवाब दे सकता है, उसे मालूम है कि कमलिनी की निराशा की नीरवता का रहस्य क्या है ?

एक दिन कमलिनी का परिचय एक युवक से मंदिर में हुआ था। वह अब से सात वर्ष पहिले की बात है। युवक संभवतः आयु में कमलिनी से कुछ छोटा था, किन्तु स्वस्थ, सुगठित शरीर और सुन्दरता के कारण आयु का अंदाज़ करना कठिन था। दोनों ने एक दूसरे को देखा था। और वह दृष्टि हृदय तक छा गयी थी। तब से उनका मिलना जुलना बढ़ता ही गया। दोनों के परिवार यह न पसंद करते थे किन्तु कमलिनी ने मान अपमान की चिन्ता छोड़कर उसी युवक को अपना आराध्य मान लिया था। युवक की माँ ने यह पसंद न किया कि एक दूसरे जाति की एक फैशनेबुल लड़की उसके पुत्र को बरबाद करे, उसके साथ घंटों एकांत कमरे में बातें करे, रात-रात भर वहाँ रहे। कई बार माँ ने कमलिनी को समाज के बंधनों की बात समझाई, चरित्र के महत्त्व की व्याख्या

की किन्तु सब कुछ सुन कर भी वह कुछ न समझी। एक बार माँ ने उसका अपमान करके उसे घर से निकाल दिया। दूसरे दिन फिर वह आ पहुँची और कहने लगी कि वह तो बेटी है बेटी का अपमान माँ नहीं कर सकती। माँ चुप रह गई। बड़े प्रयत्न किये किन्तु व्यर्थ गए। समाज में चर्चा होने लगी और अंत में माँ ने कठोरता का व्यवहार किया। माँ के पक्ष में अपने प्रियतम की चुप्पी कमलिनी कब तक बर्दाश्त करती। सोया हुआ ज्वालामुखी जाग उठा और उसने उस युवक को एक पत्र लिखा—

'तुम्हें मैंने अपना सब कुछ समझा। तुम्हारे चरणों पर अपना हृदय रखकर तुम्हारे हाथों में अपना तन सौंप दिया। वर्षों तक तुम्हारी पूजा की। समाज की परवा नहीं की। माता पिता के कोप की भाजन बनी। तुम नहीं जानते, मेरे पिता का हृदय मेरे तुम्हारे प्रेम संबंध के कारण छलनी हो गया है। तुम्हें अपना जीवन-केन्द्र मानकर मैं ज़माने की छाती पर चली—दुनियाँ की भावनाओं को मैंने रौंद दिया। सैकड़ों युवकों के प्रेम का निरादर किया। पूज्यों की आज्ञा का उल्लंघन किया। अपनी साधना नष्ट कर दी, केवल तुम्हारे लिये। बरसों के नेह का दीप बालकर तुम्हारे पथ का अंधकार दूर करती रही—तुममें सब कुछ पाने का प्रयत्न करती रही—किन्तु तुमने केवल अभिनय किया, मुझे छला, मेरे प्रेम का अपमान किया, मेरे प्रीत भरे मन को ठुकरा दिया, मेरी अन्तरात्मा पर निष्ठुरता से प्रहार किया अन्यथा क्या तुम अपनी माँ तक को न समझा पाते। मैंने तुम्हारी परीक्षा न ली, यह मेरी भूल थी। तुम्हें अपना मानकर अपने आपको भी भूल गई, मैंने अपना जीवन नष्ट कर दिया। अब बहुत देर बाद मेरी नींद टूटी है और मैं अपने आपको सँभालने की, अपनी भूल सुधारने की कोशिश करूँगी। तुम पुरुष हो, तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ा, लेकिन मैं अकेली रह गई, दुनिया की सुखी आँखों के सामने सहम कर अकेली रह गई।

मेरे तुम्हारे नाते की डोर टूट गई है। अब मेरा तुमसे कोई भी संबंध नहीं है।

कम्मी'

मनभरी निराश कमलिनी का यह तीक्ष्ण और दर्द भरा ख़त कल तक लेखक के पास था। आज उसने इसे उस युवक को वापस कर दिया है। बंकिम शायद कुछ जान सके, किन्तु दया के बारे में लेखक कुछ न बतायेगा, क्योंकि वह भी युवक है।

स्तर से ऊपर

निरंजन अपने हृदय में जो पीर अनुभव करता है, अपने चारों ओर एक अनोखी-सी नीरवता और शुष्कता महसूस करता है, उससे उसे दुःख तो नहीं होता, लेकिन लगता है कि जैसे जीवन के रस का पात्र सूख गया है।

एक परिचित सज्जन ने उसे कष्ट में समझकर नौकरी से लगा दिया है। सरकारी नौकरी है और आमदनी लगभग सवा सौ रुपये है।

जब रुपया क़र्ज़ नहीं लेना पड़ता और आपसे आप हाथ में आता है तो उसके प्रति मोह भी होता है और विरक्ति भी। मोह इस अर्थ में कि अच्छा खाने-पीने का प्रबन्ध करने के बाद भविष्य के लिये कुछ जोड़े और विरक्ति इस अर्थ में कि खाये-पिये मौज करे। रुपये तो हाथ का मैल है। मेहनत की, कमाया और बहा दिया। इससे क्या लाभ कि कष्ट में रहकर आनेवाले दिनों की विरक्ति का भार मस्तक पर लादे रहे।

और जो निरंजन अपने सुख-चैन के लिये, दोस्तों से जुटाकर या मन की मौज के अनुसार किसी का कुछ काम करके महीने में तीन-चार सौ रुपये केवल इसलिये उड़ाया करता था कि मन को कष्ट न हो, जीवन में दुख का अनुभव न करे, वह निरंजन भला सवा सौ रुपये की पूँजी को इस दृष्टिकोण से क्यों देखेगा कि इसमें अच्छा खा-पी ले और

भविष्य के लिये बचाये भी। रुपये के लिये चिन्तित रहने पर भी जिसने विलायती शराबों के सामने देशी शराबों को नहीं चक्खा था, रेस्टोरेन्ट में बैठकर अकेली चाय कभी नहीं पी थी, वह निरंजन वास्तव में नौकरी करके और भी परेशान हो गया है। अब अपने ख़र्चे चलाने के लिये वह दोस्तों से भी नहीं माँग सकता, क्योंकि दोस्त जानते हैं कि वह कमा रहा है और साथ ही यह प्रश्न भी है कि दोस्त या अन्य देनेवाले भी किस आशा पर दें जबकि पिछला ही नहीं चुकाया जाता।

लेकिन अपने में निरंजन बेहद ईमानदार है, वह नहीं चाहता कि किसी का रुपया न चुकाये। उसे ख़ुद शर्म आती रही है, जबकि वह अपने ऐसे मिलनेवालों के बीच में आता है, जिनका रुपया उसने खाया है।

पिछली बार, नौकरी मिलने से एक माह पहले, उसने कोशिश करके, एक सेठ को मिलिटरी का कान्ट्रेक्ट दिलवाया था और उसके एवज़ में उस सेठ ने निरंजन को लगभग बारह सौ रुपये दिये थे और निरंजन को वह रुपया पाकर परम सन्तोष इसलिये हुआ कि वह क़र्ज़ से मुक्त हो गया। उसकी सबसे बड़ी परेशानी हल हो गई और अब नौकर हो जाने पर वह चाहता है कि जीवन को बदल दे। दुनिया के बहुत से रास्ते उसने देख लिये हैं, बहुत से अनुभव प्राप्त किये हैं। अब उस भूलभुलैया में पड़े रहने से लाभ ही क्या। हानि अवश्य है और वह यह कि अभी तक जितना अपने आपको जानता समझता है वह सब नष्ट हो जायेगा। दुनिया इतनी अँधेरी है कि उसकी गलियों में भटकनेवाला व्यक्ति अपने नेत्रों की ज्योति को भी खो बैठता है और निरंजन गर्व का अनुभव करता है कि कम-से-कम भलाई और बुराई समझने की शक्ति अभी उसमें है और यह शक्ति गँवाना वह स्वीकार नहीं कर सकता। वह चाहता है कि जो कुछ भी जाना समझा है, या जो कुछ भी जानने समझने की इच्छा उसमें कभी हुई तो वह अपने आप को भुलावा न दे सके और चाहे कुछ हो जाये, लेकिन मरते दम

तक उसकी इन्सानियत बनी रहे, यह भावना उसके मन में बलवती होती जा रही है।

नौकरी करते चार महीने हो गये हैं। जीवन सीमित-सा हो गया है। इच्छायें फ़ासला नहीं देख पातीं। लगता है कि बन्धन में जकड़ गया है। चारों ओर जाल बुना पड़ा है। घर की चिन्ता पहले से अधिक हो गई है। माँ-बहन को कोई कष्ट न हो, यह सोचने लगा है। दुनिया को देखने के बजाय अपने आपको और अपनी सीमाओं को समझने जानने की समस्या सामने आ जाती है। रोज़-रोज़ सिनेमा जाना छूट गया है। मित्रों और परिचितों की भीड़ अब नहीं भाती। अपने आपको चिन्ताओं के बीच पड़कर बदलना चाहता था, सो लगता है कि बदल गया है। लेकिन इस बदल जाने में कुछ मज़ा नहीं दीखता। दुनिया जैसे दूर छूट गई है। अनेक प्रश्न सामने आते हैं और उन्हें सुलझाने के लिये तर्क-वितर्क भी सूझने लगते हैं। आदमी पहले अपने आपको देखे, फिर अपने घर को देखे, पड़ोस को देखने के बाद गाँव की बात आती है, देश की समस्या बहुत बड़ी है, जब आदमी खुद सँभलने की कोशिश करेगा, तभी वह देश और समाज को समझा सकता है।

अपनी आवश्यकताओं को सीमा के बाहर नहीं जाने दिया, इसलिये इच्छायें छटपटाती रहीं, लेकिन वे मर न सकीं। जज़्बातों को एक लम्बे अरसे तक दबाये रक्खा, लेकिन वे फूटने पर उतारू हो रहे हैं। ऐसा महसूस किया कि जैसे मन में कुछ कमी-सी होती जा रही है, शरीर की चिन्ता ने आ दबाया। पैसा अब पहले के बनिस्बत अधिक क़ीमती मालूम देता था, सो अपनी ही तरह मध्य वर्ग के डाक्टरों के पास गया हालांकि आयुर्वेद और यूनानी औषधियों के सामने उसने कभी ऐलोपैथी को तरजीह नहीं दी थी, लेकिन इस नाज़ुक मौक़े पर उसने अपने आप को परिचितों की कमज़ोर सलाहों पर छोड़ दिया। कन्सल्टिंग फ़ीस सोलह रुपये नहीं दे सकता था इसलिये पाँच रुपयेवाले चार-पाँच

डाक्टरों के पास गया। उन्होंने जो कुछ कहा वह एक-दूसरे से भिन्न था। सन्तोष न हुआ, लेकिन चिन्ता बढ़ गई। किसी ने कहा कि टी० बी० है, कोई बोला तिल्ली बढ़ गई है। किसी ने कह दिया कि हड्डी गल रही है। चिन्तायें और भी बढ़ीं, इलाज शुरू किया। ज़माना इतना नाज़ुक है कि किसी को एक-दूसरे के लिये कोई अपनापन, कोई सहानुभूति नहीं रही है। सभी रुपये की ओर देखते हैं, रुपया कमाना ही सबके सामने जीवन का मुख्य ध्येय रह गया, फिर चाहे वह रुपया ईमानदारी से कमाया जाय या बेईमानी से, हर सूरत में रुपया आना चाहिये। डाक्टरों ने रुपये लेना शुरू कर दिया और वेतन के अधिकांश रुपये डाक्टरों के पास जाने लगे। जीवन में जो परहेज़ कभी नहीं किया था, वह परहेज़ करना पड़ा और शारीरिक अवस्था अच्छी होने लगी, शायद सात्विक भोजन के कारण। लेकिन मानसिक अवस्था में परिवर्तन नहीं हुआ। जब इस ओर से उदासीन हो गया, तो चिन्ता कम होने लगी और मस्तिष्क साफ़ होने लगा और ऐसी अवस्था में पहले ही की तरह फिर युवती सामने आने लगी, मस्तिष्क फिर भारी रहने लगा। इलाज छोड़ दिया, परिवर्तन फिर मालूम हुआ। युवती की समस्या सामने आने लगी। मन प्राण पर नारी का मादक नशा छाने लगा और यह नशा सत्ताइस तारीख़ से पहली तारीख़ की शाम तक दिमाग़ में उमड़-घुमड़ कर आता रहा।

निरंजन शाम को आठ बजे विचारों के संघर्ष में गोते लगा रहा था, अन्त में झल्लाकर उठा, हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदले और साइकिल उठाकर चौक पहुँचा। मन में भय था और डाक्टरों की सलाहें दिमाग़ में झनझना रही थीं। फिर भी रिस्क लेना अनुचित न मालूम हुआ। हिम्मत से काम लेने की इच्छा भावनाओं पर छा गई।

मानापमान की बात भूलकर मुनीर के कोठे पर जा पहुँचा। बुढ़िया से पूछा कि मुनीर कहाँ? तो कह दिया कि वह तो कानपूर गई है, आप

तशरीफ़ रखिये। लेकिन निरंजन वहाँ तशरीफ़ रखने नहीं गया था, सो बिना कुछ कहे सुने सीढ़ियाँ उतरकर सड़क पर आ गया।

आसमान में, शाम को जो रुइया बादल थे, वे छँट चुके थे और अब उनके स्थान पर काली घटायें घिर रही थीं। शाम को जो हवा ठंडी थी वह बन्द हो चुकी थी और इस समय पेड़ स्तब्ध थे, कपड़ों के अन्दर गर्मी मालूम हो रही थी, पसीना सा आने लगा था। पानी बरसने के आसार दीखते थे, सड़क पार करते करते यह चिन्ता भुला दी कि जिस परिचित दूकानदार के यहाँ ताला लगाकर साइकिल रख आया है, देर होने पर वह दूकान बन्द कर देगा और घर तक पैदल लौटना पड़ेगा, सामने के कोठे पर किसी सूखे गले से निकली हुई मल्हार की स्वर लहरी सारङ्गी की मादक झनकार के साथ उड़ी जा रही थी। उधर से ध्यान टूटा तो देखा कि बग़ल में एक अधेड़ व्यक्ति खड़ा है, तहमत लपेटे था, आँखें गढ़े में धँस गई थीं, बिजली की रोशनी में चेहरे पर छाया हुआ पीलापन बुरी तरह चमक रहा था, किसी तीखी गंधवाले तेल से बाल सराबोर हो रहे थे और सफ़ेद कुर्ते पर कन्धे के पास कहीं कहीं तेल के धब्बे चमक रहे थे।

निरञ्जन ने जब उसकी ओर दृष्टिपात किया तो वह बोला—"साहब, एक पंछी है।"

निरञ्जन ने कुछ न कहा तो वह फिर बोला—'बिल्कुल कमसिन है, देख लीजिये, नापसन्द हो तो लौट आइयेगा, कुछ ज़ोर ज़बरदस्ती नहीं है।'

'कहाँ है'—निरञ्जन ने पूछा।

'थोड़ी ही दूर है साहब, बस उस नाले के पुल को पार कीजिये और आ गया मकान ··साहब कोई तवायफ़ नहीं है, देखेंगे तो तबियत खुश हो जायेगी, अभी कोई चार छै दिन तो आये हुये हैं, और तो कोई जानता भी नहीं, आपही जैसा कोई मुसलमान भाई मिल गया तो कह दिया नहीं तो मैं भी आदमी को पहिचानता हूँ साहब।'

निरञ्जन मुस्कराया, कहा—'क्या ख़र्च होगा।'

'वाह साहब, आप भी क्या बात करते हैं। अरे, ख़र्च की बात तो तब आयेगी जब आप पसन्द कर लेंगे।'

वह आदमी चला तो निरञ्जन भी पीछे पीछे हो लिया। गली में मुड़ा तो वह बोला—'एक बात कह दूँ बाबू, अभी शाम है बोहनी करानी होगी।'

निरञ्जन ने कहा—'अरे भाई, चीज़ पसन्द आये या न आये, तुम्हें ख़ाली हाथ वापस न करूँगा।'

निरञ्जन गली के एक अँधेरे मकान में पहुँचाया गया। दरवाज़े में घुसते ही आँगन था, जिस पर छत थी, चारों ओर सीलन और गन्दगी थी, एक ओर पलंग पड़ा था, सफ़ेद चादर बिछी हुई, बिना गिलाफ़ का तकिया लगा हुआ था। निरञ्जन को बैठना पड़ा। जी उकता गया। साथ जो लाया था उसने पंखा झलते हुये आवाज़ दी। जिसे बुलाया था, उसका नाम कलावती था। लाल साड़ी पहनकर वह अदा से आँगन के कोनेवाली सीढ़ी उतरकर सामने आई। आदाबअर्ज़ कहने की जगह नमस्ते कहा और पास आकर बैठ गई। निरञ्जन एक ओर खिसक गया।

उस आदमी ने कहा—'कहिये साहब चीज़ कैसी रही?'

निरञ्जन चुप रहा, ऐसे बैठा रहा जैसे कुछ सोच रहा है, लेकिन वह उस समय कुछ भी नहीं सोच रहा था। वह फिर बोला—'जल्दी नहीं है बाबू जी, देखिये बात कीजिये, आराम से रहिये। आप जब तक रहेंगे किसी और आदमी के लिये दरवाज़ा नहीं खुलेगा। यह किसी तवायफ़ का मकान नहीं है। भले आदमी ये लोग भी हैं।'

निरञ्जन खड़ा हो गया। पैन्ट के जेब में हाथ डाला, एक रुपया निकालकर उस औरत के सामने फेंक दिया और जल्दी से बाहर निकल गया।

दलाल भी पीछे पीछे आया। निरञ्जन ने कहा—यही चीज़ है जिसकी इतनी तारीफ़ कर रहे थे। मुझे तो बिल्कुल पसन्द नहीं है।'

उसकी आखें चमक रही थीं, जो आदमी बिना बात किये एक रुपया फेंक आया, उससे कम से कम एक रुपया पाने की तो आशा थी ही। बोला—'अच्छा साहब, दूसरी चीज़ दिखाता हूँ। आपको ज़रूर ही पसन्द आयेगी। मैं आपकी पसन्द समझ गया हूँ। लेकिन आप रुपया यों बरबाद न कीजिये। जब पसन्द आ जाय और तय हो जाय तब पैसा दीजिये।'

निरञ्जन ने कहा—'चौक की एक एक तवायफ़ के यहाँ हो आया हूँ, वहाँ से अच्छी हो कोई तो चलूँ वर्ना मेरा वक्त बरबाद मत करो।'

दलाल बोला—'चीज़ अच्छी न हो तो कहें।'

इस बार जिसके यहाँ गया, उसके यहाँ से ज़ीने पर ही खड़े खड़े दो काली काली शक्लें देखकर लौट आया। दलाल को बहुत फटकारा और एक रुपया देकर लौटा दिया।

सड़क पर आया तो दूसरा दलाल पीछे लगा, कहने लगा कि किसके चक्कर में पड़ गये आप। वह चीज़ें मैं दिखाऊँ साहब, कि तबियत खुश हो जाये।

निरञ्जन ने हल्की सी झुँझलाहट के साथ कहा—'मुझे कुछ नहीं देखना। तुम लोग जानते नहीं कि मैं हद दर्जे की तमाशबीनी करके छोड़ भी चुका हूँ। इस चौक के अलावा सारे शहर की पेशेवर औरतों को जानता हूँ। अब जो तुम कोई नई चीज़ हो तो बताओ।

दलाल ने तपाक से कहा—'नई चीज़ कहते हैं, मैं कहता हूँ कि तबियत खुश हो तो कहियेगा, वर्ना कभी सलाम का जवाब भी न दीजियेगा।'

निरञ्जन साथ हो लिया, तीन चार जगह गया, कोई भी पसन्द

नहीं आई, सबके सामने एक एक रुपया फेंक कर लौट आया, सड़क पर आकर दलाल को बहुत फटकारा और एक चवन्नी देकर वापस कर दिया।

अब निरञ्जन अकेला ही चला। पुरानी मिलने वालियों में कमला के यहाँ गया। गंगा, इकबाल, अकबरी, केसरी, मलका सभी के यहाँ घूमता फिरा। लेकिन चार महीने से जिन्हें छोड़े हुये था, उनकी आवभगत निरञ्जन की वासना को जाग्रत न कर सकी। कहीं एक रुपया फेंक आया, कहीं पान सिगरेट मँगा दिया। सड़क पर पान खाते खाते उड़ते ख्याल से हिसाब लगा गया कि क़रीब दस रुपये ख़र्च हो चुके हैं। दिमाग़ पर उस समय एक अजीब सा नशा छाया हुआ था। बार बार इच्छा होती थी कि इस पाप की नगरी से निकल जाये, जहाँ काग़ज़ का सिक्का यौवन ख़रीदता है और यौवन की लुटी हुई दुकानें पाउडर, क्रीम से सजाई जाती हैं। दूषित बीमारियों का यह जगमगाता हुआ बाज़ार आदमी का तन, मन और धन सभी कुछ बरबाद करता है।

सामने एक नया दलाल मौजूद था, निरञ्जन उसका नाम नहीं जानता, लेकिन वह पहले पहल एक दो जगहें दिखा चुका है, निरञ्जन को देखते ही आदाब कहा और बोला—'बहुत दिनों बाद आये बाबू साहब, कहिये कुछ नई चीज़ देखेंगे।'

निरञ्जन ने कहा—'मेरी पसन्द तुम जानते हो, दिखाओ तो ऐसी जहाँ से वापस आने की तबियत न हो, ऐसी वैसी चीज़ दिखाई तो कभी बात न करूँगा सो समझ लो।'

अरे साहब, आप तो जानते ही हैं कि कभी आपको मामूली चीज़ों के पास नहीं ले गया। आपको कुछ रुपयों का ख्याल थोड़े ही है, आप तो दिल बहलाते हैं, रुपये की क्या वकत है, मैंने खुद आपकी ख़िदमत की है जनाब, और वह मुस्करा दिया। फिर एक अदा के साथ सर घुमाया और इस ढंग से क़दम उठाया कि जैसे जानता है कि निरञ्जन उसके पीछे

पीछे आयेगा, और सचमुच निरञ्जन अपने स्थान पर खड़ा न रह सका, उसके पीछे पीछे हो लिया।

आसमान बिल्कुल काला हो गया था, कोठों पर पायल की झनकार और तबले की गमक गूँज रही थी। नीचे की दूकानें बन्द होने लगी थीं, लेकिन जो खुली थीं, उनमें टँगे हुए बिजली के लट्टू चमक रहे थे। मुसलमानी खाने की दूकानें और रेस्टोरेन्ट आदमियों से भरे हुए थे। बनस्पती घी की बदबू जलते हुए कबाब के साथ सारे वातावरण में फैल रही थी और निरञ्जन सड़क छोड़कर उस दलाल के पीछे एक ऊँची गली की सीढ़ियाँ पार करते हुए गंदे रास्ते पर चला जा रहा था।

पानी की फुहारें पड़ने लगी थीं और हल्की हल्की ठंडी हवा चल रही थी। गली का मोड़ घूमने पर पानी तेज़ी से बरसने लगा। दलाल एक ओर साये में खड़ा हो गया। निरञ्जन ने पूछा कि क्या गन्तव्य स्थान अभी दूर है तो वह बोला कि पास ही है, और निरञ्जन ने कहा कि तब फिर पानी से घबराने की क्या ज़रूरत है।

पानी से तर गली में बौछार के बीच दोनों आदमी आगे बढ़े।

कमरा साफ़ था कुछ तस्वीरें दीवारों पर लटक रही थीं। लालटेन जल रही थी। दुबला पतला बूढ़ा मुँह को घोंटुओं के बीच लटकाये बैठा हुआ था। एक बार निरञ्जन से उसकी आँखें मिलीं, उसने सिर झुका लिया। एक छोटी सी लड़की पास आकर खड़ी हो गई। निरञ्जन ने उसके हाथ पर एक रुपये का नोट रख दिया।

"चीज़" जो थी, उसकी आयु तेरह चौदह वर्ष से अधिक न थी, चेहरा पीला था और आँखें चमक रही थीं, वह बहुत दुबली लड़की थी।

दलाल ने कहा—"कहिये साहब।"

निरञ्जन ने ओठ को दाँतों से दबाया, बोला कुछ नहीं। एक बार फिर उस लड़की की ओर नज़र डाली, बीमार मालूम होती थी। बूढ़ा कमरे से बाहर चला गया था।

निरञ्जन ने दलाल से कहा—'मैं नहीं रुकूँगा।'

"वाह जी, इतनी कमसिन चीज़ कहाँ मिलेगी, और फिर इस बारिश में कहाँ जायँगे। मैं यहाँ आप ही जैसे पढ़नेवाले बाबुओं को लाया हूँ और दस-दस बीस-बीस रुपये दिलवाये हैं।"

निरञ्जन फ़ौरन नीचे आ गया। दलाल भी पीछे-पीछे आया। निरञ्जन ने कहा—'मैं दस बीस नहीं दे सकता, पाँच रुपये मेरे पास हैं। एक तुम्हें दे सकता हूँ, चार उसे।'

दलाल ने कहा—'ज़रा रुकिए, मैं कोशिश करता हूँ। ख्याल यह है कि आप पुराने मुलाक़ाती हैं और बारिश भी हो रही है।'

थोड़ी देर में वह वापस आया, कहा कि चार रुपये में तय हो गया है। निरञ्जन ऊपर गया, कमरा बन्द किया गया। उस युवती का हाथ छुआ तो गर्म मालूम हुआ। पूछा—'क्या तबियत ख़राब है।'

उसने कहा—'हाँ तो, पर अच्छी हूँ।'

निरञ्जन ने पूछा कि नाम क्या है, तो बताया कि विमला। निरञ्जन को ख्याल आया कि वह अस्वस्थ है। फिर वह न रुका, उठा और चल दिया, कमरा खोलकर। विमला देखती ही रही। निरञ्जन ने कहा फिर कभी आऊँगा। रुपयों की मिठाई खाना। मुझे अफ़सोस है कि तुमने इतनी सी उमर में यह पेशा अख्तियार कर लिया।

विमला ने कोई जवाब नहीं दिया। फीकी मुस्कराहट उसकी आँखों में दीख पड़ती थी और उसने आँखें झुका ली थीं।

निरञ्जन ने उसकी ओर देखा, तो बोली कि कब आओगे।

निरञ्जन ने कहा कि वायदा नहीं करता। कभी देखा जायगा। निरञ्जन को उसके प्रति कोई भाव दिमाग़ में अनुभव हुआ तो वह था केवल सहानुभूति।

नीचे उतरने के लिये ज़ीने का द्वार खोला तो देखा कि बूढ़ा और नन्हीं बच्ची लालटेन के पास बैठे हैं चुपचाप। दोनों ने एक नज़र

निरञ्जन को देखा और निरञ्जन सीढ़ियाँ तय करता हुआ नीचे पहुँच गया।

बारिश तेज़ी से हो रही थी और निरञ्जन लम्बे-लम्बे क़दम बढ़ाता हुआ चला जा रहा था। नशा उसके दिमाग़ में अब भी छाया हुआ था। किन्तु उसे सन्तोष था, और वह महसूस कर रहा था कि वह दुनिया के सब आदमियों से ऊपर है। वह गर्व का अनुभव कर रहा था क्योंकि वह जानता है कि उसी की तरह वेश्याओं के यहाँ चार-चार माह पड़े रहनेवाले व्यक्तियों में से कौन ऐसा है कि इतना त्याग कर सके।

इतिहास में इतना नाज़ुक वक़्त कभी नहीं आया होगा। लोग दाने-दाने को तरस रहे हैं। कम्यूनिस्ट बंगाल के भूखों के लिये जल्से करते हैं, जबकि घर-घर में लोग मौत से लड़ रहे हैं। लेकिन निरञ्जन ने जो कुछ व्यर्थ ख़र्च किया, उसका उसे पाश्चात्ताप नहीं है क्योंकि आज वह सोच रहा है कि वेश्या के कोठे पर जाकर व्यर्थ धन लुटाना, शरीर को बरबाद करना और मन को कष्ट देना कितनी बड़ी भूल है। यह भूल संभवतः निरञ्जन उस समय न जानता जबकि इस रुपये के एवज़ में कुछ पाता। लेकिन आज वह इसलिये जान गया है कि उसने अपनी मेहनत से कमाये हुए रुपये समाज से त्यागे हुये प्राणियों को दे दिये। लोग हज़ारों सैकड़ों उड़ाते हैं, लेकिन उसके लिये पन्द्रह बीस ही आज हज़ार हैं। क्योंकि वह रुपये का मूल्य समझने लगा है, और जान गया है कि आदमी जब तक खोयेगा नहीं, तब तक पा नहीं सकता। निरञ्जन आज अपने आपको महान् इसलिए कहता है कि काजल की कोठरी में भी जाकर वह काला नहीं हुआ।

भावुक

गन्दी गली के एक कोने में उस नये मकान के उपरवाले कमरे में वह रहता है। कमरे के बीच में एक बड़ी सी मेज़ के इधर-उधर दो कुर्सियाँ पड़ी हैं। कमरा साफ़-सुथरा सा ही है, लेकिन मेज़ पर उल्टी सीधी पड़ी हुई किताबें अच्छी नहीं मालूम होतीं। सामने की दीवार पर लकड़ी का एक ब्रेकिट है, उस पर एक टेबुल-कलेंडर और घड़ी रक्खी है। ब्रेकिट के बाईं ओर दीवार में हैंगर लगा हुआ है, उस पर दो तीन कपड़े उल्टे सीधे लटक रहे हैं। ब्रेकिट के ठीक ऊपर फ्रेम की हुई मीनार का एक सिलुहेट टँगा है। पीछेवाली खिड़की पर हरे रङ्ग का एक परदा लटक रहा है। वहीं एक कोने में जूते रक्खे हैं, जूते के पास ही सिगरेड के छोटे-छोटे कई टुकड़े पड़े हुए हैं; कहीं-कहीं दियासलाई की दो एक तीलियाँ भी नज़र आ रही हैं। एक ओर किसी पुराने अख़बार के पन्ने हवा में उड़ रहे हैं। लेकिन वहाँ की यह अव्यवस्था बुरी नहीं लगती।

मेज़ पर दाईं ओर रक्खे हुये रेक पर कई मोटी-मोटी किताबें लगी हैं। उसीके सामने खुला हुआ क़लम, सिगरेट की एक डिब्बी और दियासलाई रखी है। इधर-उधर कई किताबें बीच के किन्हीं पेज़ों पर खोलकर रखी हुई हैं। एक किताब उसके सामने भी खुली हुई रक्खी है। चश्मे के अन्दर से उस सुन्दर युवक की बड़ी-बड़ी आँखें उस

पुस्तक के पृष्ठ पर गड़ी हुई हैं, बाल इधर-उधर बिखरे हुये हैं। चौड़ी सी पीठ पर तनी हुई सफ़ेद कमीज़ पसीने से तर हो रही है।

पेन्सिल से उस किताब के खुले हुए पन्ने पर दो, तीन लाइनें खींचकर उसने रेक में से बर्टेन्ड-रशल लिखित 'माइन्ड एन्ड मेटर' नामक पुस्तक निकाली। जल्दी-जल्दी कई पेज उलट कर वह एक जगह रुका और ध्यान से कुछ पढ़ने लगा, तब उसे भी एक स्थान पर खोलकर और किताबों की ही तरह सामने रख लिया।

बालों पर हाथ फेरकर उसने अपनी पीठ कुरसी से सटा दी और दीवार पर टँगे हुये सिलहट को एक बार ध्यान से देखकर फिर झुका और सी० ई० एम० जोड की 'इन्ट्रोडक्शन टु फ्लासफी' उठाई।

* * *

यों तो घन्टों खड़े रहना पड़ेगा, यह सोचकर मैं उसके पीछे से हटकर मेज़ के सामने पड़ी कुरसी पर आकर बैठ गया। उसने सिर उठाकर मेरी ओर देखा, मुस्कराया भी और फिर उसी तरह किताब की लाइनों में उलझ गया।

मैंने पीछे मुड़कर घड़ी की ओर देखा। ऐसा लगा जैसे घड़ी की सुई बड़ी तेज़ी से बढ़ रही हो। आठ बजे आया था और अब ग्यारह बज रहे हैं। अपने सामने बैठे हुये आदमी पर मुझे रोष आ रहा था। यह जानते हुये भी कि वह कभी फ़ुरसत में नहीं रहता, दूसरे वह मेरा मित्र भी है, लेकिन मेरा यह मित्र कुछ अजीब ढंग का है। मैं तीन घण्टे से उसके सामने बैठा हुआ हूँ और वह अपनी किताबों में ही उलझा हुआ है। उसे बात करने की भी फ़ुरसत नहीं है, मित्रता का तक़ाज़ा भी उसे मुझसे बातें करने के लिये विवश नहीं करता? फ़लासफ़ी की किताबें क्या वास्तव में मनुष्य को संसार की वास्तविकता से इतनी दूर कर देती हैं!

उँगलियों के बीच पेंसिल को नचाते हुये उसने गम्भीरता से

पूछा—"तुमने कभी किसी सीधी लकड़ी को पानी में डुबोकर देखा है ?"

अजीब सवाल है ! क्या इन मोटी-मोटी किताबों में यही सब लिखा है ? और यह इन्हीं सब बेकार की बातों में उलझा रहता है ? मुझे उसकी बात पर हँसी आ रही थी—"मैंने तो कभी इसकी ज़रूरत नहीं समझी," मैंने उसकी बात का उत्तर दिया।

"अरे ! यह ज़रूरी नहीं है कि ख़ुद डुबोकर देखा जाये। कहीं न कहीं नहान-वहान में गड़ी हुई देखी हो !"

"हाँ, नहान के अवसर पर तो गाड़ी ही जाती हैं। नहीं तो सैकड़ों आदमी बह न जायें।"

"हाँ, हाँ, ठीक तो है। अच्छा, यह बताओ कि पानी में गड़ी हुई बल्ली या बाँस जैसा हम बाहर देखते हैं, वैसा ही सीधा सा दिखाई देता है ?"

"पानी में तो सीधा दिखाई ही नहीं दे सकता। क्योंकि लहरों का कम्पन उसे देखनेवालों के लिये तिरछा सा या टेढ़ा-मेढ़ा बना देता है।"

"सवाल यह है कि वास्तव में वह बल्ली जो पानी में गड़ी होती है ठीक है, या जो हम बाहर देखते हैं वह ?"

"पानी में गड़ी हुई तो ठीक मानी ही नहीं जा सकती। वह तो लहरों के कारण टेढ़ी-मेढ़ी मालूम होती है। हम तो उसी को सही मानते हैं जो बाहर दिखाई पड़ती है।"

"यह बात ग़लत है। बाहर दिखाई पड़नेवाली चीज़ सही क्यों मान ली जाये, मैं कहता हूँ पानी की लहरें ही अगर उसके वास्तविक रूप को हमारे सामने लाती हों तो तुम्हें यह मानने में क्या एतराज़ है ?"

"यह सब बेकार की बहस है। मैं नहीं मान सकता कि जो वास्तविकता है उसे ग़लत कह दिया जावे।"

"तुम नहीं समझते। यह तो एक तरह से अन्धविश्वास है। देखो।" सामने के अधखुले दरवाज़े की ओर उँगली उठाकर एक मीनार की ओर इशारा करके उसने कहा, "वह मीनार की चोटी जितनी छोटी हम यहाँ से देखते हैं उतनी ही छोटी क्यों न मानी जाये, उतनी बड़ी ही क्यों मान ली जाये, जितनी बड़ी पास से दिखाई देती है।"

"यह सब अन्धविश्वास है! तुम लोग फ्लासफ़र हो। तुम्हें तो बेकार की बातों पर उल्टी-सीधी बहस करनेवाला कोई न कोई चाहिये।"

"तुम समझते नहीं। फ्लासफ़र पागल नहीं होते। उनकी ही खोज से संसार सुधरा है और सुधर रहा है।" वह कुछ-कुछ उत्तेजित होता-सा दीख पड़ा। 'मौलक्यूल' की टाँग दुनिया में सबसे छोटी है लेकिन वह माईक्रामकोप से दीख जाती है। इसी तरह सोच देखो कि यह सब हमारी दृष्टि की विभिन्नता है। हम जो कुछ देखते हैं, उसे यों ही वैसी मान लेना ठीक नहीं है जैसी कि वह चीज़ दिखाई पड़ती है।"

* * *

मैं उस दिन की बातें सोच रहा हूँ। उसकी बातें बेढंगी मालूम होती हैं, लेकिन मैं अधिकारपूर्ण शब्दों में ऐसा कहने का अधिकारी नहीं हूँ। यह मैं जानता हूँ कि उसके विषय का जाननेवाला उससे यदि इस सम्बन्ध में बहस करे तो वह उसको सब कुछ समझा दे। मैं सुनता तो रहता हूँ कि विदेशी फ्लासफ़र यहाँ तक कहने के लिये तैयार नहीं हैं कि हम हम ही हैं।

लेकिन यह एम० ए० पास व्यक्ति क्या अपने बाप की कमाई को इसीलिये ख़र्च करता रहा है कि उच्च शिक्षा प्राप्त करके अपने आपको पागल बना लेगा और दुनिया को यह मौक़ा देगा कि वह उसे पागल समझ ले। छः वर्ष पहले जब उसने मेरे साथ एम० ए० पास किया था तब कहता था कि उसकी इच्छा संसार भ्रमण करने की है। लेकिन दो वर्ष बाद ही घर से वापस आने पर वह इस तरह पागल बनकर आयेगा

यह मैंने पहले कभी सोचा भी नहीं था। कहाँ भ्रमण का शौक और कहाँ फ़लासफ़ी ! ज़मीन आसमान का अन्तर है।

मैं दुनिया की बात कह रहा हूँ, वास्तव में ऐसा कोई भी कारण नहीं है कि मैं ही उसे पागल समझ लूं। लेकिन जो बात मुझे मालूम है वह दूसरे लोग तो नहीं जानते। ठीक भी है; दूसरे लोग अगर उन बातों को जान भी जायें तो उसका तो कुछ नहीं बिगाड़ सकते, लेकिन उसके बारे में बहुत ग़लत धारणा कर लेंगे। उसकी मानसिक कमज़ोरी पर हँसे बिना न रहेंगे।

* * *

नैनीताल के पास एक गाँव है, वहीं का रहनेवाला मेरा यह मित्र है। इसने मुझे अपना सब हाल बता दिया था। इसके माता-पिता और एक बहन भी है। एक भाई भी था। जिसे वह अपने प्राणों से भी अधिक चाहता था। आज भी उसकी याद उसे आती है। और वह ! वह दार्शनिक उसकी याद में बहनेवाले सारे आँसुओं के वेग को रोक नहीं पाता।

उसके गाँव में अँगरेज़ी के आठवें दरजे तक ही पढ़ाई के लायक़ स्कूल है। इसलिये उसके बाप ने उसे मामा के घर नैनीताल भेज दिया। मल्लीताल में उसका मकान था। अगर कहूँ कि पहाड़ के आदमी जितने ईमानदार और स्वस्थ, सुन्दर होते हैं उतने ही मज़बूत अपने चाल-चलन में भी।

शहर के स्कूल में वह नवें दरजे में पढ़ने लगा। अभी तक उसे दुनिया के नाते-रिश्ते तक का ज्ञान न था। वह तो अपने माँ-बाप की गोद में नन्हीं बहन को लेकर खेलता रहा है। माँ से पूछता था कि वह कहाँ से आया है, तो माँ कहती भगवान् ने भेज दिया है। वह सोचा करता उसके ही माँ-बाप क्यों हैं ? वह क्यों नहीं है किसी का बाप। फिर औरतें ही क्यों माँ होती हैं ? आदमी क्यों नहीं माँ होते ?

धीरे-धीरे स्कूल के लड़के उसे यह सब भेद बताने लगे। ज्यों-ज्यों वह यह बातें जानता गया त्यों-त्यों उसका ध्यान मामा के मकान के सामने रहनेवाली अपने स्कूल के मास्टर की उस लड़की की ओर आकर्षित होने लगा जो अक्सर उसकी ओर देखकर हँस देती थी। उसे भी अदबदाकर हँसी आ जाती थी, लेकिन वह सोचता था कि वह लड़की क्यों उसे देखकर हँसती है? वह ज़रूर उसकी वेषभूषा देखकर ही हँसती होगी लेकिन जब वह हँसती है, तो उसको क्यों हँसी आ जाती है?

धीरे-धीरे वह उस हँसी का कारण समझने लगा। अब वह उसे कनखियों से देखता, उसकी प्रतीक्षा करता। जब वह उसके घर आती तो इशारे से चुपचाप अपने पास बुला लेता। पढ़ाई-लिखाई की बातें होतीं। फिर वह अपने स्कूल में लड़कों से सुनी हुई बातें उसे सुनाता और वह उसे लड़कियों से सुनी हुई। यह सब बातें दुनियादारी की होती थीं।

* * *

छुट्टियों के बाद जब वह नैनीताल आया, तब पढ़ाई में, उम्र में और उनकी बातों में एक-एक साल आगे बढ़ गया था।

अब वे दोनों अधिक समझ गये थे। थोड़ी-सी लज्जा भी उनके बीच आ गई थी। दुनिया की कठोरता से भी उन्हें थोड़ा परिचय हो गया था। इसीलिये वे अब एकान्त में मिलने की कोशिश किया करते थे।

कभी-कभी वे बहुत सबेरे या शाम को घूमने के बहाने निकलते और किसी झरने के किनारे या बस्ती के पासवाले जंगल में बैठकर बातें करते। अधिकतर अब दोनों ही एक-दूसरे को हरदम केवल देखना भर चाहते थे। अब वे बातें जिन्हें पहले वे ख़ूब चाव से किया करते थे, उनके पास थीं ज़रूर और वे भी पहले से अधिक; लेकिन एक-दूसरे पर प्रकट करना चाहते हुये भी नहीं कर सकते थे।

वह ग़रीब-सी थी। पिता को तीस रुपये मिलते थे। तीनों बहनें स्कूल में पढ़ती थीं।

एक बार उसने उसे फटी-सी साड़ी में देखा। दूसरे दिन ही वह एक साड़ी और ब्लाउज़ का कपड़ा ले आया। पहले तो वह इन चीज़ों को लेने से इन्कार करती रही। लेकिन जब उसने कहा कि कोई पूछे तो कह देना मामीजी ने दी है। ख़ैर।

वह जानता था कि उसने क्यों उसे साड़ी लाकर दी है। इसलिये नहीं कि वह ग़रीब है। ग़रीब तो हमारे देश में भरे पड़े हैं। फिर क्यों दी? वह जानता है कि उसने साड़ी क्यों दी है और उसकी बात वह भी जानती है कि उसने उसे साड़ी क्यों दी है और उसने ली क्यों है?

लेकिन एक बात उसने और सोची कि वह ऐसी एक नहीं कई साड़ियाँ प्राप्त कर सकती है। यह जो लड़के उसकी स्कूल की गाड़ी के पीछे-पीछे आते हैं। क्यों आते हैं? यह उसने अब से पहले ही जान लिया था।

पहले वह अपने मन से ही चीज़ें लाता था। कभी कुछ कभी कुछ। लेकिन जब वह ख़ुद ही अपनी चीज़ों की कमी उसे बताती तो वह आश्चर्य नहीं करता। जिस तरह भी होता वह उसे अपने से नाराज़ नहीं होने देता था।

फिर उनका मिलना कम होता गया। इसलिये नहीं कि उसकी परीक्षा हो रही थी.....। वह तो मिलना चाहता था लेकिन वह कहती थी कि माँ नहीं आने देतीं। वह सोचता, ठीक है, वह जवान तो है ही। सुना जाता है लोग अपनी जवान लड़कियों का घर से निकलना पसन्द नहीं करते। दुनिया में सैकड़ों तरह के आदमी हैं।

हाई स्कूल की परीक्षा होने के बाद जब वह घर जाने लगा तब उसकी बड़ी इच्छा हुई कि एक बार उससे मिल ले। उसने कोशिश भी

की, लेकिन मिलन न हो सका और अन्त में वह घर चला गया। रास्ते में सोचता गया कि कितनी बार वह उसकी छत की ओर झाँका था, कितनी बार अपलक नेत्रों से उसने मकान की खिड़की को अपना लक्ष्य बनाया था, कितनी बार वह स्कूल के ठेले में बैठी हुई लड़कियों में उसे तलाश करके हार गया था; लेकिन भाग्य में नहीं बदा था, न देख सका। वह तो घर भी जाने को तैयार न था, लेकिन पिता की चिट्ठी आई थी। मामा ने ज़बरदस्ती से भेज दिया। मामा क्या जाने प्रेम किसे कहते हैं ?

लेकिन यही ज़रूरी नहीं है कि वही उसकी तलाश करे। भला उसने क्यों न सोचा, मैं अब जा रहा हूँ तो एक बार मुझसे मिल ले। लेकिन यह सब उसका दोष भी तो नहीं है, शायद उसके माता पिता को सब बातें पता लग गई हों। ठीक है, वह ज़रूर उसे चाहती है। यह तो कभी माना ही नहीं जा सकता कि वह जानबूझ कर उससे मिलने नहीं आई होगी। वे दिन क्या भुलाये जा सकते हैं जब वह जाने कितनी देर तक उसकी गोद में सिर रखकर बियाबान जंगल में अकेली बैठी रहती थी। और वह कभी किसी बात का संकोच भी तो नहीं करती थी। उसमें इतना अपनापन था कि जिस चीज़ की उसे ज़रूरत होती थी कह भी देती थी। उसका बाप ग़रीब है, नहीं उसे क्या ज़रूरत थी ? और बिना अपना समझे कोई ग़ैर आदमी किसी भी ग़ैर से निःसंकोच कोई बात तक नहीं कह पाता। चीज़ माँगना तो दूर की बात है।

घर पर भी वह उसकी याद नहीं भुला सका। पास पड़ोस में कितनी ही लड़कियाँ रहती हैं। माँ कहती थीं वे उससे शहर की पढ़ाई के बारे में बात करना चाहती हैं, लेकिन वह किसी से बात करना नहीं चाहता। वह तो जाने किसकी याद में घुला जाता है। छुट्टियाँ समाप्त होने से पहले ही घर छोड़कर नैनीताल आ गया। जिस रास्ते से उसका रिक्शा जा रहा था, वह एक तरह से सुनसान-सा था। वहीं उसने अपनी

सबसे प्रिय वस्तु साकार देखी। लेकिन उसके कन्धे पर हाथ रक्खे वह कौन जा रहा था ? शायद उसका भाई हो। लेकिन उसके भाई तो कोई भी नहीं है। तीन बहनें ही हैं। शायद कोई भाई हो, उसे क्या मालूम; तो उस समय उसे उससे बात करना ठीक नहीं है। लेकिन यह बात उसकी समझ में नहीं आई कि ज्योंही उसने उसकी ओर देखा वह पीली सी क्यों पड़ गई थी। वह हँसा भी लेकिन उसने हँसने की भी कोशिश नहीं की ? हाँ, जल्दी से उस युवक का हाथ अपने कन्धे से हटाकर सीधी चलने लगी थी।

यों तो यह प्रेम की बेल सूख ही जायेगी। वह तो कोशिश करता है कि उससे किसी तरह मिले, लेकिन वह तो कभी कोशिश नहीं करती। वह तो हमेशा अपने भाई के ही साथ घूमती रहती है।

और उस दिन जब वह मिली तो सुस्त सी थी। कारण पूछा तो उसने कहा इस बार की फ़ीस नहीं दे सकी है, पिता जी चिन्ता के मारे मरे जा रहे हैं, लेकिन वे इस बार कहाँ से फीस दें। क़र्ज़ वाले तो सब ले गये। अगर उन्हें रुपया न दिया जाता तो वे उनका अपमान करते। और इतना कहकर वह रोने लगी। दूसरे दिन वहीं मिलने का वादा करके दोनों अलग हो गये।

उसने उसे फीस का रुपया देते हुये उस युवक के बारे में पूछा, जो अब अक्सर उसके साथ रहता है। तो उसने भी वही बताया, जो अभी तक वह सोच रहा था। उसने उसे अपने चाचा का लड़का बतलाया। ख़ैर। सन्देह था ही नहीं, यह जानकर भी विचारों में परिवर्तन न हुआ, क्योंकि इसकी गजायश न थी। मिलना फिर बन्द हो गया। कई महीने यों ही बीत गये। पहले बेचैनी हुई फिर धीरे धीरे रोने की सी इच्छा हुई। जी भर कर रो लेने के बाद उसने अपना दिल दुखानेवाली से बदला लेना चाहा...।

भला इसी बिना पर वह कहती थी कि वह उसे हृदय से प्रेम करती

है...? वह सोच रहा था एफ० ए० पास करने के बाद तो उसे शहर जाना ही पड़ेगा। उच्च शिक्षा प्राप्त करके वह संसार भ्रमण करेगा ही। अगर इसी बीच उसके साथ शादी की बात तय हो जाये तो पिता जो रात दिन चीख़ते रहते हैं उनकी भी इच्छा पूरी हो जाये और उसे भी जीवन की सबसे मूल्यवान् चीज़ मिल जाये।

ज्यों ही वह घर से बाहर निकला कि सामने तारवाला खड़ा दीख गया। उसी के नाम घर से तार आया था। भाई सख़्त बीमार था। वह आठ साल का छोटा सा होशियार भोला भाला भाई उसके सामने नाच गया, जिसे वह अपने रहते कभी रोता हुआ भी नहीं देख सकता था। बीमार हो गया है। सख़्त बीमार हो गया है, वही भाई। भगवान् करे वह उसके पहुँचने से पहले ही अच्छा हो जाये; जिससे यह ढेर सारे खिलौने, कपड़े और फल खेलते खाते देखकर वह निहाल हो जाये।

घर जाकर उसने भाई की जो हालत देखी, वह कल्पना से आगे बढ़ी हुई थी। जिस भाई की आशा पर उसने अपने भविष्य का प्रोग्राम बनाया था, वह इतना बीमर कभी हो सकेगा, इसकी कल्पना करना भी वह उचित नहीं समझता था। और भाई की अन्तिम श्वासें खिंच रही थीं।

बहन उसे गोद में चिपकाये पड़ी थी। पहाड़ों पर यह निमोनियाँ होता ही है इतना ज़्यादा। लेकिन घरबार क्यों छोड़ दिया जाये, इसी-लिये कि वहाँ रहने से बीमारी का डर रहता है। लेकिन घर तो छोड़ा ही नहीं जा सकता। ख़ैर।

माता-पिता भजन-कीर्तन में लगे हैं, भाई बेहोश पड़ा है। वह भगवान् की मूर्ति के सामने जाकर हाथ जोड़कर कहने लगा—'हे भग-वान्! मेरे नन्हें भैय्या को बचा लो। अगर किसी को बुलाना ही है तो मैं आने के लिये तैयार हूँ.....।'

और तभी अन्दर बैठी हुई बहन की चीख़ सुनी। भागता हुआ वह

वहाँ गया। जो कुछ वह जानते हुये भी देखना नहीं चाहता था, वही सब देखना पड़ा। भाई के हाथ पैर ठंढे पड़ गये थे। और बहन वहीं खाट के एक कोने पर लुढ़क गई थी। मुहल्लेवाले इकट्ठे हो गये थे और वह दीवार पर हाथ का सहारा ले चुपचाप खड़ा था। माँ रो रही थी। किसी का ध्यान उधर नहीं था। पड़ौसी नन्हें भैया की मृत देह को ले जाने की तैयारियाँ कर रहे थे। लेकिन माँ उसे नहीं छोड़ रही थी। तब वह एकाएक दीवार का सहारा छोड़ कर आगे बढ़ा और माँ के हाथों से बच्चे की लाश छीन ली। उसकी तनी हुई आँखें देखकर माँ की हिम्मत कुछ भी कहने की न हुई। घर का वह बच्चा जिये एक नहीं सभी दिल से चाहते थे, उनकी आँखों से सदा के लिये ओझल होगया।

फिर वह एकाएक पूजाघर में घुस गया। देवताओं की सारी मूर्तियाँ उठा लाया और पूरी ताक़त से उन्हें सड़क के उस पार फेंक दिया। सबकी आँसू भरी आँखें उसे देखती ही रहीं। किसी की हिम्मत नहीं हुई कि उसे रोके। तब वह छोटे भैया के कमरे में गया। बक्स नये-नये सूटों से भरा हुआ था। कोई भी उसके पीछे जाने की हिम्मत नहीं कर सका। जेब से दियासलाई निकाली। सिगरेट का डिब्बा भी साथ ही निकल आया। सब सिगरेटें निकाल कर मसल दीं। फिर दियासलाई की एक तीली निकालकर बक्स में आग लगा दी। सामने मेज़ पर बस्ता रक्खा था। किताबें निकाल कर उनमें भी दियासलाई लगा दी। माँ-बाप ने जब कमरे में से धुआँ उठते देखा तब जल्दी से कमरे की ओर गये। देखा, मेज़ पर रक्खी हुई किताबें और बक्स के कपड़े जल रहे हैं। माँ आगे बढ़ी तभी उसने दरवाज़े को दोनों हाथों से रोका और चीख़-कर कहा—"बाहर रहो माँ! यह मेरे भैया का कमरा है। मेरे बनवाये हुये कपड़े हैं। मेरी ख़रीदी हुई किताबें हैं। तुम जाकर भगवान् की पूजा करो। अगर वह उसे जीवित कर दे तो मैं इन कपड़ों को उसी हालत में

कर दूँगा। तुम सब यहाँ से जाओ। जाओ, भगवान् के भक्तो! यहाँ से चले जाओ! मैं किसी की भी शक्ल नहीं देखना चाहता। यहाँ डाक्टरों की कमी थी जो उसके सिर पर रात दिन यह भजन और कीर्तन किये जाते थे? तुम लोगों ने जानबूझ कर मेरे भैया को मारा है। तुम जाओ यहाँ से; वर्ना...वर्ना तुम लोग नहीं जानते मैं क्या करूँगा...!"

सब लोग जा चुके थे। वह पास ही की कुरसी पर थका-सा पड़ रहा। तभी बहन ने कमरे में धीरे से प्रवेश किया। कुरसी के पीछे जाकर उसने भाई के कन्धों पर हाथ रखकर कहा—"भैया..।"

उसकी बात पूरी होने से पहले ही वह कुरसी से उठा और ज़ोर से चीख़कर बोला—"तुम लोग फिर आ गये? सुना नहीं तुमने...?" तब उसने बहन की आँखों से बहते हुये आँसुओं को देखा। और वह बहन से चिपटकर रो पड़ा। रोता ही रहा। जी भरा ही नहीं। रोते-रोते शाम हुई रात हुई पलक आँखों पर पड़ रहे। पर आँसू बहते ही रहे। दूसरे दिन भी वही रहा और तीसरे दिन भी वह रोते-रोते ही नैनीताल गया।

मामी रोने लगी, तब उसने उन्हें डाट दिया—"रोती हो मामी जी, पहले नहीं बना कुछ? भगवान् से प्रार्थना करने से क्या मेरा भैया बच गया। भगवान् को माननेवाली बनी है...।"

घर में रोना सुनकर पड़ोस की औरतें आ गईं। वह अपने कमरे में जाकर बैठ गया। मेज़ पर सिर झुकाकर बैठा रहा। तभी एक परिचित सी आवाज़ उसके कानों के पर्दों को छू गई—"तुम आ गये...!"

सिर उठाकर देखा। "तुम भी तो आगईं। लेकिन तुम क्यों आई हो? मैं जानता हूँ, अभी मुझमें जान जो बाक़ी है तुम ही मार डालो। तुमने जिला-जिला कर मारा है तो आज सदा के ही लिये न मार डालो...।"

और वह रोने लगी। तब उसने फिर कहा—"रो-रोकर मत दिखाओ,

वे बातें अब भूल जाओ। तुम्हें याद है पारसाल तुम्हारे साथ पढ़नेवाली जानकी के ऊपर कम्बल डालकर किसी ने उसकी चोटी काट डाली थी। वही हाल तुम्हारा भी करूँगा। वरना मेरे साथ चलो। बोलो चलती हो या...?"

उसके कुरसी छोड़ने से पहले ही वह चीख़ती हुई कमरे से भाग गई। उसकी मामी और दूसरी औरतों ने उसे घेर लिया। तब उसने कहा "वे कहते हैं, तेरी चोटी काट लूँगा...।"

मामी ने भी उसे डाटा। मामा ने भी डाटा। पिता के पास भी शिकायत पहुँची। और वह सबकी नज़रों से गिर गया, यह उसने समझा तभी, बिना किसी को सूचना दिये यहाँ आकर पड़ा है। अब चार साल बाद गया था, सो ऐसा जाने क्या हो गया है कि कभी न जाने की प्रतिज्ञा कर आया है।

* * *

और ट्यूशन कर करके मेरे साथ एम० ए० पास करनेवाले उस दार्शनिक की यही कहानी है। पता नहीं, उसके माँ बाप का क्या हाल होगा ?

आज जाने कितने सालों से वह इन फ़लासफी की किताबों में उलझा हुआ है और जज की लड़की को पढ़ाता है। यही उसकी रोटियों का ज़रिया है। लेकिन मुझे अपने दोस्तों में वह सबसे प्यारा है।

सन्देह

अपने होते हुए जो अपने नहीं हैं, उनकी बात निरंजन कैसे कहे, लेकिन जो पराए होने पर भी अपने हो सकते हैं, उनकी प्रशंसा भी किस तरह करूँ ?

घर-द्वार से विलग हुए निरंजन-जैसे साधारण व्यक्ति को जिन नृपेन्द्र बाबू ने एक दिन अकस्मात् स्टेशन पर देखकर, अपने हृदय में छोटे भाई की तरह स्थान दिया था, उनकी बात और उनका नाता क्या वह भूल सकेगा ? आदमी एक दूसरे पर उपकार करता है, धन से सहायता देकर कष्ट दूर करता है, लेकिन इन दुनियावी रीति-रिवाजों से अधिक दृढ़ मन का बन्धन होता है, जो सब उपकारों से बड़ा उपकार है और समुद्र के बीच खड़ी हुई उस चट्टान की तरह सुदृढ़ होता है जो लहरों की चपेटों के बीच भी अडिग खड़ी रहती है।

दुनिया-दिखावे का नाता तो कभी टूट सकता है, लेकिन मन का नाता टूट जाने पर भी नहीं टूटता।

स्टेशन पर हुए उस क्षणिक किन्तु निजत्वमय परिचय को दो बार नृपेन्द्र बाबू के यहाँ जाकर निरंजन सुदृढ़ बना चुका है और इसीलिए इस बार भी वह संकट में है, यह जानकर भी उन्हीं के यहाँ पहुँचा। आसमान पर बादल छाए थे—तीन दिन से लगातार पानी बरस रहा था, ओले भी गिरे थे।

पहुँचते ही भाभी का सबसे पहला सवाल हुआ कि, उनके पत्र का उत्तर क्यों नहीं दिया ?

कह दिया कि समय नहीं मिला और दूसरे वह आ ही रहा था।

"आ रहे थे, तब तो पत्र भेजना ही चाहिए था कि अब आ रहे हो।"

वह निरुत्तर हो गया, क्योंकि पहला ही अवसर था कि उनके पत्र का जवाब नहीं दिया था। फिर तो बड़े ज़ोर से शिकवे-शिकायत हुई और कई आरोप भी सहने पड़े।

भाभी नाराज़-सी बैठी थीं। निरंजन ने कहा—"माँ और भैया कहाँ हैं ?"

वे.....लेकिन, बोलीं नहीं।

अन्दर जाने के लिए ज्योंही वह कुरसी से उठा कि द्वार पर लटकता हुआ हरे रंग का परदा हटाकर नृपेन्द्र बाबू ने कमरे में प्रवेश किया।

उसके प्रणाम करने से पहले ही उन्होंने सिगरेट का ढेर सारा धुआँ छोड़कर, बनाने के ढङ्ग से कहा—"तो आप आ गए।"

वह चुपचाप खड़ा रहा। भाभी ने एक बार उनकी ओर देखा और आँखें झुका लीं। उन्होंने पहले निरंजन की ओर फिर भाभी की ओर देख सिगरेट का कश खींचा। निरंजन को आज वे कुछ अजीब-से लग रहे थे, उनकी सरसता भावुक आँखों की कोरों को छोड़ ग़ायब हो गई थी।

कुछ देर मौन रहने के बाद वे बोले—"हम लोग सोच ही रहे थे कि तुम जल्दी ही आ जाओगे।"

भाभी ने उनकी ओर देखा। उन्हें देखकर और अवसरों की तरह इस बार निरंजन को हँसी नहीं आई। वैसे ही चुप खड़ा रहा।

वे सामने पड़ी कुर्सी पर हत्थे टेककर ज़रा झुके। सिगरेट का कश

खींचा और पास की मेज़ पर रखी 'ऐशट्रे' में टुकड़े को दबाकर बुझा दिया। कहा—"बैठ जाओ।"

निरंजन बैठ गया। उस समय उसे न मालूम क्यों ऐसा लग रहा था कि कभी अनजान में उसने उनके प्रति कोई अपराध तो नहीं कर डाला, जो अब उनकी समझ में आ गया हो और उसके निर्णय स्वरूप दण्ड देने के लिए उपस्थित हुए हों।

उन्होंने निर्विकार भाव से उसे देखा और बोले—"तुम्हारी ये आवारागर्दी और कब तक चलेगी?"

उसकी कमज़ोरी होगी, उसे वे स्नेह करते हैं, वह उन्हें श्रद्धा और आदर के भाव से देखता समझता है।

फिर कहा—"तुम्हारी ये आदतें अच्छी नहीं लगतीं अब। सोचता था बिना कहे ही आप सुधर जाओगे। समझदार हो, पढ़े-लिखे हो और बच्चे भी नहीं हो। पर देखता हूँ, कुछ समझ-बूझ नहीं सकते, चाहते ही नहीं हो और मैं हूँ पराया किन्तु अपनेपन से जो पेश आता हूँ, इसलिए कहता हूँ।"

भाभी की ओर देखा तो ऐसा लगा कि वे इन बातों को पसन्द नहीं कर रही हैं। लगा कि जैसे वे अब कुछ कहना चाहती हैं कि नृपेन्द्र बाबू बोले—"यों मुझे तुम पर कोई अधिकार नहीं है पर तुमने जो मुझे अपना समझा है? तो मैं नहीं चाहता कि उसका बेजा फ़ायदा तुम्हें उठाने दूँ।"

निरंजन उनकी बात का जवाब देने को हुआ कि उन्होंने हाथ उठाकर वैसा करने से रोक दिया और खुद बोलते रहे—"आज की दुनिया के नौजवान हो, यह मानता हूँ, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम समाज और धर्म से अलग रहकर किसी तरह का विद्रोह करने में सफल हो सकोगे।"

सिगरेट जलाकर फिर बोले—'तुम सब तरह की बातें करते हो, पर

यह कभी नहीं बताते कि तुम्हारे मन में क्या है तुम क्या करना चाहते हो, तुम्हारी जिन्दगी का लक्ष्य क्या है.... ?'

उनका स्वर तेज़ होता जाता था कि आटे से सने हुए हाथ लेकर माँ ने कमरे में प्रवेश किया और नृपेन्द्र को सम्बोधन करके कहा—'वाह' यह भी कोई बात है कि आते ही आते उस पर टूट पड़े। अभी न कुछ खाया न पिया, बिचारे के सिर पड़ गये। ज़रा सुस्ताने भी नहीं दिया।'

तब निरंजन का हाथ पकड़कर उठाया फिर तुरन्त देखा कि गीला आटा उसके हाथ में भी लग गया है। हँसकर कहा—'ख़ैर।'

फिर जल्दी से कहा—'चलो, नहा-धोकर कपड़े बदलो और तब मेरी बातें सुनो आकर।'

नौकर ने ग़ुसलख़ाने में गरम पानी रख दिया था। निरंजन कपड़े लेकर स्नान करने के लिए चला गया।

रसोई घर में जब कपड़े बदलकर पहुँचा तो एक पट्टा बिछा पाया और उसके सामने धधकते हुए कोयलों से भरी अँगीठी। एक ओर सर झुकाए भाभी बैठी थीं।

माँ ने निरंजन को देखते ही कहा—'मैंने कोयले निकाल दिए हैं, गलाव पड़ रहा है। ज़रा ताप ले। नहा के आया है, गरमी आ जाएगी।'

निरंजन बैठ गया और भाभी से कहा कि चाय पीऊँगा, तो माँ बोलीं कि अब ग्यारह बजे चाय पीकर क्या होगा। अभी चावल बन जाएँगे और पाँच मिनट में साग बन जाएगा, साथ ही गरम-गरम रोटियाँ सिकती हैं।

निरंजन ने कहा—'ज़रा-सी देर में बन जाएगी। भाभी, तुम ज़रा जल्दी से बना दो।'

माँ ने कहा—'चाय भी एक तरह का नशा होता है.....।' फिर

एकदम भाभी से कहा—'बना दे बहू ! और देख बेसन के लड्डू होंगे, सो ले आ चार। मठरियाँ भी बना दे !'

मुझसे कहा—'पेट तो चाय से ही भर जायगा। घड़ी भर में खाना बना जाता था। भाभी तब तक रसोई घर से बाहर जा चुकी थीं। माँ ने साग की टोकरी और चाकू उठा लिया और खुद गोभी बघारने लगीं। माँ ने फिर कहा—'ऐसी ही भूख है तो लड्डु खाके पानी पी ले।'

मैं बोला—'नहीं माँ ! चाय भी, लड्डू भी और मठरी भी।'

उन्होंने मेरी ओर प्यार से देखा और खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

* * *

चाय के समय भैया की तलाश करवाई तो नौकर ने कहा कि पण्डित राजकुमार के साथ शतरंज की एक पेचीदा चाल में फँसे हैं।

भाभी बोलीं—'पहले शतरंज की बाज़ी हार के आए तो मुझसे बिगड़े, दुबारे हारे तो तुम्हें इतनी ऊलजलूल सुना गए अब हारेंगे तो...।'

मैंने बात पूरी की—'माँ से बिगड़ेंगे।'

माँ हँस पड़ीं। भाभी ने हँसकर कहा—'छुट्टी के दिन खाना-पीना भूलकर इसी में फँस जाते हैं और हमेशा हारते हैं। घर मुँह फुलाए बैठे रहते हैं।'

मैंने एक लड्डू खाने के बाद चाय की दो चुस्कियाँ ली थीं कि भाभी ने कहा—'अब तुम साफ़-साफ़ बताओ कि शादी के बारे में क्या सोचा है ?'

'शादी की बात इस समय छोड़ो भाभी ! मैं जा तो रहा नहीं अभी, जो ये बातें रह जाएँगी।'

'ये चाल-पट्टियाँ किसी और को सिखाना जाकर। इसी तरह टालते-टालते किसी दिन चुपके से खिसक जाओगे, यह मैं खूब अच्छी तरह जानती हूँ।'

'तो मैं यह समझूँ कि मेरी भाभी मेरा क़तई ऐतबार नहीं करतीं ?'

चाय का प्याला दुबारा भरते हुए भाभी बोलीं—'सो बात नहीं है, लेकिन तुम शादी की बात हमेशा उड़ा देते हो।'

माँ ने बीच में ही भाभी को टोंककर कहा—'तुम भी बहू, वही क़िस्सा लेकर बैठ गईं। ज़रा निश्चिन्त होने दो, मैं मिन्टों में सब कुछ ठीक कर लूँगी।'

ख़ैर साहब, भाभी चुप हुईं और मेरा विशुद्ध भारतीय चाय पान शांति से सम्पन्न हो गया।

धोबी आया था, सो भाभी कपड़े मिलाने चली गईं, तब माँ ने मुझसे कहा—'मेरी समझ में नहीं आता कि तुम बनारस में पड़े-पड़े क्या कर रहे हो ? बी० ए० पास किया, वकालत भी इस साल पास कर लोगे। अब भले लड़कों की तरह ब्याह-शादी करके घर-गिरस्ती बसाओ और कहीं नौकरी-चाकरी करो ; समझे ?'

मैंने कह दिया—'धीरे-धीरे सब हो जाएगा।'

'हो कब जाएगा ? अब बड़े हो गए हो। पढ़-लिखके समझदार बन गए हो, फिर भी बच्चों की जैसी बातें करते हो।'

मैं चुप रहा तो फिर कहने लगीं—'क्या इसी तरह ज़िन्दगी बिता दोगे ? मेरा कहा मानो तो ब्याह कर लो और बहू को लेकर घर चले जाओ। घर न जाना चाहो तो यहीं रहो। नहीं तो फिर अकेले ही रहो, पर ब्याह ज़रूर कर लो।'

मैंने परेशान होकर कहा—'अभी तो मैं थका-माँदा आ रहा हूँ और तुम ये क़िस्सा लेकर बैठ गईं। मेरा जी यों ही अच्छा नहीं है।'

मुस्करा के माँ ने कहा—'मैं तुम्हारी बहानेबाजी खूब जानती हूँ। जाओ, आराम करो, पर याद रहे कि इस बार, लगन में तुम क्वाँरे न रहो।'

मैं बिना कुछ कहे अपने कमरे में चला गया।

* * *

कौलेज खुलने में अभी तीन चार दिन बाक़ी थे। उपन्यास में मन न लगा तो चुपचाप बैठकर लालटेन की हिलती-डुलती लौ देखने लगा। सरदी ज्यादा होने के कारण कहीं घूमने के लिए नहीं गया था, पर घर में तबीयत नहीं लग रही थी। कुरसी के हत्थे पर ओवरकोट पड़ा था, जानता था कि पहनकर कहीं जाऊँ तो सरदी कम लगेगी, पर माँ जाने न देंगी। भाभी शायद नीचे रसोईघर में थीं।

तभी पीछे से भारी जूतों की गम्भीर ध्वनि सुनाई पड़ी।

नृपेन्द्र भैया कमरे के बीच आकर खड़े हो गए और एकबार मुझे घूरकर देखा, जैसे कोई शराबी चेत आने पर अपनी कुल जमा-पूंजी हड़पने वाले को देख रहा हो।

सिगरेट को झटके के साथ कमरे से बाहर फेंक दिया और गुर्राकर बोले—'तुम्हें अपना इतिहास मालूम है कुछ ?'

'कैसा इतिहास भैया ?' आश्चर्य से मैंने कहा।

वे वैसे ही गम्भीर भाव से सामने वाली कुरसी पर बैठ गए, फिर कहा—'यही कि अपने घर से ठुकराए हुए, तुम जैसे आवारागर्द को मैंने अपना हृदय दिया, प्यार दिया और अपना सगा भाई समझा।'

मुझे उनकी बातें सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वे इस तरह की बातें क्यों कर रहे हैं ? और अपनी दशा और स्थिति का स्मरण कर बड़ा क्षोभ हुआ कि मैं कैसा अकेला-अकेला, ठुकराया-ठुकराया हूँ और मेरे मन का दुख और व्यथा कोई क्यों नहीं समझ पाता ?

जो बात सही है उसे झूठ तो मैंने साबित नहीं किया। कहा—'ये बातें भी भला कभी भुलाई जा सकती हैं।'

'तो हमने जो तुमको इतना समझा था किसलिए ?'

'शायद इसीलिए कि मैं जो अपने को भी अपना न समझ पाया था सो आप लोगों को अपनों से भी ज़्यादा समझा।'

'और हमें अपना समझ कर आपने हम पर बड़ा भारी एहसान किया, क्यों ?'

'एहसान ? अपनेपन, आत्मीयता और स्वजनता के अर्थ एहसान तो नहीं है।'

गुस्से से काँपते हुए कण्ठ से उन्होंने कहा—'एहसान न होगा, पर दग़ाबाज़ी तो है ही। दग़ाबाज़ी, धोखेबाज़ी, श्रोफ़! घोर विश्वासघात।'

'क्या मतलब है आपका ?' स्थिति की गम्भीरता समझकर मैंने कहा।

शान्त होकर उन्होंने एक गहरी साँस ली और कहा—'मतलब अपने हृदय से पूछो।'

'मेरी समझ में आपकी बात नहीं आ रही है।'

'अब मेरी बातों का मतलब तुम्हारी समझ में कैसे आएगा ? मैंने तुम्हें यहाँ, अपने घर में, आज़ादी देकर जैसा फ़ायदा उठाया, भगवान् वैसा फ़ायदा किसी को न दे।'

'क्या कहने की चेष्टा कर रहे हैं आप ?'

'नासमझ बनने की कोशिश न करो। मुझे स्वप्न में भी यह ख़याल न था कि तुम मेरे साथ ऐसा व्यवहार करोगे ? क्या इसीलिए मुझे भाई कहा था। तुम्हारा वह भोलापन जो मैंने पहले देखा था, क्या बनावटी नहीं था ? तुमने मेरे प्रेम का नाजायज़ फ़ायदा उठाया।'

राम-राम, इनका यह सन्देह है ? जिन्होंने मुझे छोटा भाई समझा, मुझे इतना चाहा, उनमें ऐसा अप्रत्याशित परिवर्तन ? मैं आश्चर्य-चकित रह गया। धीरे से कहा—'मैंने ऐसा कोई काम नहीं किया है जो आप के हक़ में बुरा साबित हो। व्यर्थ नाराज़ होकर परेशान होने से तो कोई लाभ नहीं है।'

वे कुरसी से खड़े हो गए, मैं भी खड़ा हो गया। तब दाँत किटकिटा कर उन्होंने कहा—'तुमने मेरे दिल पर डाका डाला है। तुम गुण्डे।'

उस समय मैं होश में होने पर भी बेहोश था। होश तब मालूम हुआ कि जब नृपेन्द्र भैया की गर्दन पकड़ने के लिए बढ़ा हुआ मेरा हाथ बीच में ही रोक लिया गया और मैंने देखा कि माँ सामने खड़ी हैं।

नृपेन्द्र भैया कमरे से पता नहीं कब चले गए थे।

माँ ने आँसुओं से डबडबाई हुई आँखों से मुझे देखकर कहा—'उसके दोस्तों ने उसे बिगाड़ दिया है, पर मैं तुम्हें अपना बेटा समझती थी, वही समझूँगी। कभी समझ गया तो आपही तुमसे क्षमा माँगेगा।'

फिर जाते-जाते कहा—'दुखी होने की बात नहीं है, पर तुम दस बजे की गाड़ी से चले जाओ।'

सामान ठीक करते-करते मैं अपने भाग्य को कोसने लगा। नृपेन्द्र भैया का वह लाड़-प्यार! माँ की ममता!! भाभी का स्नेह!!! मेरे आँसुओ, तुम उस समय सूख क्यों न गए?

जिस नौकरी और शादी न करने की हठ ने घर बार छुड़ाया, उस घर में बसने वाले मेरे स्वजन रह रहकर मुझे याद आ रहे थे। कैसा करुणादायक है यह विश्व? नियति कैसी कठोर है कि जिनके स्नेह को लेकर मैं अपने एकाकी जीवन का दुखदर्द भुलाए हुए था, वे भी मुझे ठुकरा गए!

उस घर से, उस घर के प्राणियों और वस्तुओं से क्षणभर में ही मेरा सम्बन्ध टूट गया। जहाँ मेरे मन की भावनाएँ खुलकर खेली थीं, जहाँ मेरे जीवन का वसन्त एक दिन लहलहाता था, वहाँ आज पतझड़ की वीरानी उदासी व्याप गई थी। अब मैं वहाँ कैसे रहता, कैसे उस भावना का अन्त करता, जो उस घर के मालिक ने अपने रोम-रोम में पैदा कर ली थी।

हाय री नियति, तू इतनी कठोर क्यों है, क्यों ऐसी निर्दयता को तूने जन्म दिया कि जो जुड़े हुए सम्बन्धों को क्षण भर में तोड़-फोड़कर नाश कर देती है? अगर तुझे सम्बन्ध-विच्छेद करने में आनन्द आता है

तो यह सम्बन्धों की रज्जु एकबार झकझोर कर तोड़ दे कि फिर सम्बन्ध जुड़े ही नहीं।

* * *

नौकर को मैंने नहीं बुलाया। एक हाथ में सूटकेस और दूसरे में होलडाल लेकर कमरे से बाहर हुआ। देखा, बाहर झुरमुट प्रकाश में भाभी खड़ी थीं।

'मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करो, भाभी! मैं जाता हूँ, कभी न आऊँगा अब!' इतना कहकर जब सीढ़ी उतरने लगा तो मालूम हुआ जैसे पीछे किसी के आँसुओं का बाँध टूट गया हो। रुका नहीं। नीचे उतरकर आया तो दालान में माँ खड़ी थीं।

होलडाल ज़मीन पर रखकर मैं उनके पैर छूने के लिए झुका, ज़ोर से रोकर उन्होंने मुझे हृदय से लगा लिया और धीरे से कहा—'मेरे बेटे।'

बैठक के द्वार पर लालटेन रक्खी थी, किवाड़ के पास छिपे से कुछ काग़ज़ फटे पड़े थे। वे मेरे पत्रों के टुकड़े थे जो समय समय पर भाभी को लिखे थे। उन्हें दिया हुआ मेरा फोटो भी फटा पड़ा था।

वहाँ से आगे बढ़ गया, पता नहीं माँ ने मेरे चेहरे पर आँसू देख पाए या नहीं। सड़क पर जाकर देखा कि भाभी नीचा मुँह किये उन फटे काग़ज़ों के पास किवाड़ से टिके हुए पुतले की तरह खड़ी हैं।

ताँगे में बैठा तो लगा कि किसी की आँखें मुझे देख रही हैं, रोकना चाहती हैं, जैसे उस घर का कण-कण मुझे पुकार रहा है... 'न जाओ मेहमान! रुक जाओ।'

जिस घर को मैंने अपना समझ लिया था, जिस घर के प्राणियों को मैं अपने मन का समस्त स्नेह, आदर और अपनापन दे चुका था, उस घर से, उस घर के प्राणियों से सदा के लिए विच्छेद की कल्पना मेरे मन में उमड़-घुमड़कर चीत्कार कर रही थी। यह व्यथा, वियोग

और बिछोह सहन करने की शक्ति, पता नहीं कहाँ से मुझमें आ गई थी और हृदय की गति बन्द न हुई।

स्टेशन अभी दूर था कि घोड़े पर हलका-सा चाबुक मारकर, बीड़ी का आख़िरी कश ले उसे फेंकते हुए ताँगे वाला धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा। जब उधर ध्यान दिया, तो आवाज़ संगीतमय लहरियों के साथ, किटकिटाती हुई सर्द हवा में उड़कर इधर-उधर फैलने लगी—

किस्मत पलटा खाए बाबू!
किस्मत पलटा खाए।
गैर गैर ही रहे और अब
अपने हुए पराए बाबू—
अपने हुए पराए।
बिछुड़ गए सब साथी-संगी,
रह रह आज अकेले पन में—
रोना मुझको भाए;
बाबू! किस्मत पलटा खाए।

ताँगेवाला बड़ी तन्मयता से गा रहा था। स्टेशन पर आकर पता नहीं, उसे पैसे देने से पहले मैंने अपने आँसू पोंछे या नहीं।

जीवन की गति

हरीश के जन्मते ही उसकी माँ की मृत्यु हो गई थी। पिता ने ही उसे पाला पोसा था। पिता शहर के एक अर्द्ध-सरकारी स्कूल में सहायक अध्यापक थे। उन्हें चालीस रुपये मासिक वेतन मिलता था। चार रुपये महीने किराये पर एक छोटे-से मकान में दोनों रहते थे। हरीश ने उसी मकान की दीवारों से अठारह वर्ष तक अपना परिचय क़ायम रक्खा था। शहर की एक राह से उसे जितनी जानकारी थी उतनी और किसी से भी नहीं—वह राह थी स्कूल की। अपने पिता की देख-रेख में ही उसने दसवाँ पास किया था और उसी स्कूल में अध्यापक हो गया था।

हरीश स्कूल के सबसे तेज़ विद्यार्थियों में था। स्कूल के अधिकारियों से लेकर मामूली चपरासी तक उसे इज़्ज़त से देखते थे। हरीश को अभिमान छू भी न गया था। वह गम्भीर भी न था। विद्यार्थी-जीवन में जिस तरह लड़कों से हँसता-खेलता था उसी तरह अध्यापक होने पर भी वह उनके साथ पेश आता था।

हरीश का एक ग़रीब सहपाठी था लोचन। उसके माता-पिता नहीं थे। एक जवान बहन के साथ अपने स्वर्गीय पिता की अन्तिम स्मृति एक छोटे-से मकान में वे अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। लोचन के पास पन्द्रह रुपये के दो ट्यूशन थे। उन्हीं के सहारे भाई बहन की गुज़र होती थी।

यों हरीश लोचन का सहपाठी था लेकिन वह कभी उसके घर नहीं गया था। उसी के क्या किसी भी साथी के यहाँ जाने की आज्ञा उसके पिता नहीं दे सकते थे। वे जानते थे कि लड़के सोहबत से बिगड़ते हैं। और हरीश तो सहपाठियों के प्रति इससे अधिक उदार था भीन हीं कि स्कूल में किसी ने कुछ पूछा वह बता दिया, किसी ने बात की हँसकर जवाब दे दिया।

लेकिन मैट्रिक पास करने के बाद ज्यों ही वह अध्यापक हुआ त्यों ही उसका भोलापन काई की तरह सफ़ा हो गया। यह एक आश्चर्य की बात थी कि हरीश जैसे विद्यार्थी खुद मुख्तार होते ही इतने आज़ाद हो सकते हैं। हरीश ने कभी यह नहीं सोचा कि वह क्या था और क्या बन गया है। देखनेवाले क्या सोचेंगे, पिता ने सुना तो उनके दिल पर कैसा सदमा पहुँचेगा।

वह तो शायद सोच चुका था कि जीवन भर मन को मारा है, अब संसार को भी देखना चाहिए। और वह सीधा उस गड्ढे में कूद पड़ा जो मनुष्य के लिए पतन के रास्ते का दरवाज़ा होता है। वह नन्दन की बात सोचता था? पर नन्दन अमीर का लड़का है। उसके लिए जीवन भर दोनों हाथों से रुपये लुटाना भी मामूली है लेकिन हरीश तीस रुपये महीने ही पाता है। वह तीस में क्या-क्या करेगा।

लेकिन हरीश यह नहीं सोचता, वह सोचता था, नन्दन ज़िन्दगी का लुत्फ़ उठा रहा है, वह भी उठायेगा। और वह नन्दन के पीछे चल देता है।

वेश्या के कोठे पर एक का गुज़ारा नहीं होता, वहाँ चाँदी से जीवन तोला जाता है, फिर तीस रुपये मासिक पानेवाला, पिता का इकलौता पुत्र, सैकड़ों विद्यार्थियों का गुरु हरीश वहाँ से क्या ले पायेगा।

धीरे-धीरे हरीश बहुत आगे बढ़ गया है। शराब के नशे में चूर

जीवन की सच्चाई को भूलकर वह वेश्या के कोठे पर जीवन की क़ीमती घड़ियाँ बिताता है। यह सब उसके पिता से भी छिपा नहीं रहता।

पिता का हृदय धड़कने लगा। वे रातें उन्हें याद आ गईं, जो नन्हें से हरीश को गोद से चिपकाये, जागते हुये उन्होंने बिताई थीं। क्या उन्होंने इतनी बड़ी कुरबानी इसीलिए की थी कि एक दिन हरीश पढ़ लिखकर वेश्यागामी बने और जिस समाज में अपनी इज्जत क़ायम रखने के लिए उन्होंने दूसरी शादी नहीं की थी, फूँक-फूँककर क़दम उठाये थे, उसी समाज में वही हरीश जिसके लिए उन्होंने जीवन को जीवन नहीं समझा, उनकी इज्जत को दुनिया के सामने मिट्टी में मिला देगा? बाप का दिल तड़प उठा—उससे ज़्यादा और क्या होता?

एक दिन सुबह उठते ही उन्होंने हरीश को भी जगाया। लाल आँखें किये हरीश ने पिता की ओर देखा। ओठों के किनारे जमी हुई पपड़ी को पोंछकर वह खाट पर उठकर बैठ गया। पिता ने खड़े-खड़े ही प्रश्न किया—'रात कै बजे वापस आये थे?'

हरीश ने लापरवाही से उत्तर दिया—'यही ग्यारह बजे होंगे!'

'साढ़े बारह तक तो मैं जागता रहा हूँ।' पिता ने ज़रा तेज़ स्वर में कहा।

'आपकी घड़ी ग़लत है।' वैसे ही हरीश बोला।

'लेकिन चौकी के घण्टे तो ग़लत...'

पिता की बात काटकर हरीश ने उत्तर दिया—'आपने सुना नहीं ठीक से।'

एक पिता पुत्र की इतनी बड़ी गुस्ताख़ी कभी सहन नहीं कर सकता। तेज़ स्वर में उन्होंने केवल इतना कहा—'तुम मुझे पागल बनाते हो!'

पिता की ओर क्रूर दृष्टि से देखकर हरीश ने कहा—'आप इस समय यहाँ से चले जायें मेरी तबियत ठीक नहीं है।'

और पिता चुपचाप कमरे से बाहर हो गये। जैसे उनके दिल पर हथौड़ा मारकर किसी ने कहा हो—'हरीश पर शासन नहीं कर सकोगे। हरीश तुम्हारे काबू से बाहर हो गया है। वह पतन के रास्ते पर चला गया है और पतन के रास्ते पर जानेवाले की आँखें किसी के समझाने से नहीं खुलतीं। उस राहगीर की आँखें तभी खुलती हैं जब वह उस अँधेरे में स्वयं अपने को भी खो देता है। उसे जाने दो उसकी राह पर। वह अब बच्चा नहीं है, समझाने से काम न चलेगा।'

और पिता ने आँखें पोंछकर भोजन की परोसी हुई थाली को बिना एक ग्रास तोड़े ही ढँक दिया, तब जूते पहनकर स्कूल की ओर चल दिये।

* * *

कमरा बन्द करके हरीश सोच रहा था रुपये की बात। बिना रुपये अब काम नहीं चलेगा। लेकिन रुपया कहाँ से आये। पिता से न तो माँग ही सकेगा न वे देंगे ही तभी उसे लोचन की याद आ गई। लोचन सीधा-सादा आदमी है। हरीश को चाहता भी खूब है, उसके पास रुपये होंगे तो वह नाहीं न करेगा, यह सोच हरीश लोचन के घर की ओर चला।

लोचन घर पर ही था। हरीश को देखते ही बोला—'कहाँ रहते हो आजकल? इतने दिनों से दिखाई ही नहीं दिये।'

हरीश ने साँस छोड़कर कहा—'रहता कहाँ हूँ दोस्त! आजकल बड़ी मुश्किल है।'

लोचन बोला—'आख़िर क्या बात है? मुझे तो बता दो।'

'हाँ' बताने तो आया ही हूँ, कहीं जाना तो नहीं है?' हरीश एक कुर्सी पर बैठ गया।

'जा तो नहीं रहा। तुम चाय वाय पियोगे क्या?' और लोचन बिना हरीश के उत्तर की प्रतीक्षा किये ही अन्दर चला गया। थोड़ी

देर बाद वापस आकर हरीश के सामने ही एक कुर्सी पर आ बैठा।

हरीश चुपचाप बैठा सोच रहा था—यह भाई बहन कितनी खुशी से जीवन व्यतीत कर रहे हैं। लोचन की आमदनी ही क्या है। फिर भी घर चन्दन-सा हो रहा है। वह चाय भी पिलायेगा लेकिन उसके घर कोई जाता है तो वह बैठने को भी नहीं कहता। मनुष्य अपने जीवन को चाहे तो अभिशाप से भी वरदान बना लेता है लेकिन जो भगवान् की इस देन का मूल्य नहीं समझते उन्हें आदमी कहा ही क्यों जाये?

तभी खद्दर की धोती पहने माला गोरे-गोरे हाथों में चाय की ट्रे लेकर कमरे में आ गई। हरीश के विचारों का बाँध टूट गया। वह एकटक माला को देख रहा था। माला नीची आँखें किये मेज़ पर ट्रे रख रही थी और हरीश तन्मय होकर उसके सौन्दर्य पर आँखें जमाये हुये था। तभी लोचन बोला—'यह मेरी बहन है—माला। पारसाल तुम्हारे साथ इसने भी मैट्रिक किया था। यों, तुमसे कई साल छोटी होगी।'

हरीश देख रहा था, जैसे उसे खुशी हुई। माला ऐसे हँस रही थी जैसे उसके भैया ने उसकी अधिक तारीफ़ कर दी हो। लोचन फिर बोला—'और हरीश! माला गाना भी खूब गाती है।'

हरीश ने आश्चर्य से हँसते हुए कहा—'अच्छा!'

और माला बोली—'मैं तो गाना-वाना कुछ नहीं जानती। भैया तो वैसे ही कह रहे हैं।'

चाय की ट्रे में दो तश्तरियों में बेसन के लड्डू और अख़रोट भी रखे थे। लोचन ने हरीश से कहा—'भई! कभी-कभी हो जाया करो मैं तो तुम्हारे यहाँ बाबूजी के डर से नहीं आता जब पढ़ता था तो उनकी मार से भूत भागते थे। वही मार याद आ जाती है।'

तीनों जने हँस पड़े। हरीश के अधिक कहने पर माला ने भी चाय

पी ली। तब हरीश जाने के लिए उठा। माला बोली—'बैठिए न, अभी-अभी तो आये ही हैं। भैया कहते थे आप कविताएँ लिखते हैं, एक आध सुनाइये न।'

लोचन ने कहा था, मैं कविता लिखता हूँ, हरीश मुस्कुराते हुए बोला—'लोचन तो तुझे बनाने की ही कोशिश करता है।'

लोचन ने कहा—'और स्कूल में जो कवि सम्मेलन हुआ था उसमें मैडिल क्या मुझे मिला था।' लोचन की बात पर हरीश हँस पड़ा। फिर बोला, अच्छा, किसी दिन सुनाऊँगा। लेकिन पहले आपका गाना सुन लूँगा, फिर लोचन से कहा—'अच्छा भाई! अब चलूँ।'

लोचन बोला—'और जो बात कहनेवाले थे वह तो कही ही नहीं।'

हरीश ने लापरवाही से कहा—'अरे, कोई ज़रूरी बात तो नहीं। यों ही चाय पीने को आया था।'

'अच्छा अब कब दर्शन होंगे?' लोचन ने पूछा।

'दर्शन? अगर भई, दर्शन करने हों तो मथुरा-वृन्दावन जाओ यहाँ तो दर्शन वर्शन नहीं हैं।' हरीश की बात पर माला को ज़ोर से हँसी आ गई। तब हरीश वहाँ से निकलकर सड़क पर आया।

हरीश के मस्तिष्क में इस समय बड़ा संघर्ष हो रहा था। रह-रहकर उसे माला के बारे में विचार आ रहे थे। लेकिन हरीश! तू शराबी है, वेश्यागामी है। तुझे माला-जैसी पवित्र लड़की के बारे में सोचने का अधिकार ही क्या है। तू माला के तेज़ से भस्म हो जायेगा। तेरी राख को संसार के किसी भी कोने में जगह न मिलेगी। उन्हीं हृदयहीन नारियों के बीच में अपनी बस्ती आबाद कर जो चाँदी को तौलती हैं। माला हृदयहीना नहीं है। उसके बारे में ऐसा सोचना भी पाप है। माला हृदय तोलती है और सबसे क़ीमती हृदय को परख सकती है उसे चाँदी की परख नहीं आती।

सहसा सामने से एक ताँगा निकला। ताँगे पर एक पुरुष और एक

स्त्री बैठे थे। स्त्री की शक्ल देखकर ही हरीश हक्का-बक्का-सा रह गया। आश्चर्य से आँखें फाड़कर उसे देखता रहा। यही स्त्री है वह जो हरीश से कहती थी कि उसके सिवा वह किसी को नहीं चाहती और इस समय गर्दन में हाथ डाले वह किसके साथ जा रही है। लेकिन वह वेश्या है उसे कोई नहीं रोक सकता। उसकी आँखों में जादू है। उस जादू को पकड़नेवाला कोई नहीं है। उन आँखों के लाल डोरों में बँधकर जीवित बचकर कोई कभी भी बन्धन-मुक्त नहीं हुआ है।

हरीश! तू पागल है। ज़रा हृदय पर हाथ रखकर एक बार सोच तो कि तू क्या था और क्या बन गया है। क्या तेरे पिता ने तुझे निर्दोष जानकर इसीलिए समाज के आगे छोड़ दिया था कि तू उनके काम में कलंक का एक हरूफ़ बनकर सदा चमका करेगा!

और लड़खड़ाता हुआ हरीश अपने दरवाज़े पर पहुँच गया। उस समय सूर्य छिप चुका था। अमावस्या के अँधियारे में जहाँ-तहाँ म्युनिसिपैलिटी की लालटेनें टिमटिमा रही थीं। दूर कहीं से मन्दिर में घण्टों की टनटनाहट उसके कानों में पड़ी।

अन्दर आकर उसने देखा धुयें से भरे रसोई घर में बैठे पिता भोजन बना रहे थे। उसकी हिम्मत उनके सामने जाने की नहीं हुई। चुपचाप अपने कमरे में आकर बैठ गया। सामने दीवार पर एक वर्ष पहले की फ़ोटो टँगी हुई थी, जिसमें सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय कविता लिखने पर सभापति उसे स्वर्णपदक दे रहे थे। उसने वह तस्वीर उतारी और सामने रखकर बैठ गया।

तभी पिता हाथ में लालटेन लेकर उसके सामने आ खड़े हुए। हरीश वैसे ही शान्त बना बैठा रहा। मेज़ पर लालटेन रखकर पिता बोले—'आज तुम बर्ख़ास्त कर दिये गये हरीश।'

हरीश ने पिता की बात समझी नहीं उसने घबड़ाकर पूछा—'क्या बाबूजी?'

आज जाने कितने दिनों के बाद बूढ़े बाप ने अपने बेटे के मुँह से बाबूजी का सम्बोधन सुना था। उनका मन भर आया लेकिन फिर भी वे बोले—'हेडमास्टर ने तुम्हें बर्ख़ास्त कर दिया है।'

हरीश पर मानों वज्राघात हुआ। वह सब कुछ समझ गया। इतने दिन हो गये स्कूल नहीं गया था। लेकिन वह सोचने से क्या फ़ायदा? अब तो एक पैसे की भी आमदनी का कोई ज़रिया नहीं है। वह स्कूल से निकाल दिया गया है।

'लेकिन क्यों?' पिता की ओर देखकर आश्चर्य से उसने पूछा।

'तुम मुझसे पूछते हो क्यों? हेडमास्टर ने तुम्हें रंडी के कोठे पर चढ़ते हुए देखा है। उन्होंने तुम्हें शराब पीते हुए देखा है। वे कहते हैं जिस व्यक्ति का चरित्र ही ठीक नहीं है वह दूसरों का चरित्र-निर्माता कैसे बन सकेगा। तुमने तो हरीश, मुझे भी बरबाद कर दिया। हम ग़रीब हैं तो क्या हुआ? हमने अपनी इज़्ज़त को इतने प्रयत्न करके क़ायम रक्खा था, उसे तुमने दो क्षण में मिट्टी में मिला दिया। तुमने यह भी नहीं सोचा कि तुम्हारे बूढ़े बाप ने तुम्हारे चरित्र को क़ायम रखने के लिएकितने प्रयत्न किए हैं?' पिता ने एक साँस में कह दिया।

हरीश चुपचाप बैठा सुन रहा था। उसे मालूम हो रहा था जैसे उसके हृदय में बर्छियाँ भोंकी जा रही हैं।

पिता ने फिर कहा—'तुम समाज में अपना सर ऊँचा करके चलते थे। समाज तुम्हें आदर से देखता था, अब तुम्हें कौन पूछेगा? मेरे बाद तुम्हारा कोई है? अब छोटे से छोटा आदमी तुम्हारी ओर उँगली उठाकर कह सकेगा हरीश शराबी है, हरीश वेश्यागामी है और तुम उससे कुछ न कह सकोगे। अगर अपने चरित्र को बनाये रहते तो किसकी मजाल थी जो तुम्हारे सामने ज़बान खोल लेता?'

हरीश वैसे ही नीचे दृष्टि किये उठा और कमरे के बाहर जाने लगा—तभी पिता ने गम्भीर स्वर में कहा—'कहाँ जाते हो?'

हरीश के पाँव वहीं रुक गये। एक दिन वह था जब हरीश पिता की आज्ञाओं को ठुकराकर बाहर चला जाता था और रातों ग़ायब रहता था और आज जब पिता की आवाज़ उसके कानों में गई तो वह बढ़ न सका। पिता ने फिर पूछा—'मैं पूछता हूँ, तुम कहाँ जा रहे हो ?'

'लोचन के यहाँ।' धीरे से हरीश ने कहा।

पिता जानते थे लोचन स्कूल के विद्यार्थियों में सबसे अधिक चरित्रवान रहा है। साथ ही अब तक उन्हें यह भी पता था कि हरीश और लोचन में बनती नहीं है, लेकिन आज हरीश के मुँह से ही लोचन के घर जाने की बात सुनकर उन्हें जितना आश्चर्य हुआ उतनी ही प्रसन्नता भी। फिर भी उन्होंने पूछा—'क्यों ?'

हरीश भीगी बिल्ली-सा आज्ञाकारी हो रहा था, बोला—'यों ही।'

हरीश कमरे की देहली पर खड़ा था, जब पिता कुछ देर न बोले तो उसने फिर पूछा—'जाऊँ बाबूजी ?'

'बाबूजी' सुनकर पिता का मन प्रसन्नता के आवेग से भर गया। उन्होंने भरे हुये कण्ठ से कहा—'जाओ।' और स्वयं हरीश की कुरसी पर बैठकर उसके फोटो को देखने लगे। तभी उनके नेत्रों से दो आँसू उस चित्र पर गिर कर छिटक गये।

* * *

अँधेरी सड़क पर धीरे-धीरे चलता हुआ हरीश बिजली के लट्टुओं से जगमगाते हुए बाज़ार में आ गया। उस समय उसके चेहरे पर बिखरे हुए बाल धीरे-धीरे हिल रहे थे। माथे पर पसीना चमक रहा था। आँखों में चमकती हुई ज्योति में विषाद, पश्चात्ताप और खेद के चिह्न अंकित थे।

तभी सामने से दो लड़के आते हुए दिखाई दिए। उन्होंने पास आते ही हरीश की ओर हाथ जोड़कर कहा—

'नमस्ते, मास्टर साहब।'

'हरीश ने भी नमस्ते का जवाब हाथ उठाकर दे दिया। तब उसने सुना पीठ पीछे जाकर वे दोनों लड़के उपहास भरे स्वर में ज़ोर से हँस रहे थे। हरीश को ऐसा लगा जैसे किसी ने पहाड़ की चोटी से उसे फेंक दिया हो। वह चाहता था तेज़ी से भाग कर किसी ऐसी जगह छिप जाये जहाँ से उसे कोई देख न सके।

रास्ता चलते चलते ही उसने अपनी बिखरी हुई भावनाओं को समेट कर निश्चय किया कि वह कभी किसी वेश्या के यहाँ न जायेगा और न शराब पियेगा। इससे उसे सन्तोष न हुआ। तब वह लोचन के घर जाते जाते हेडमास्टर साहब के घर की ओर मुड़ गया।

सबसे पहले उसने हेडमास्टर के पैर छुये। हेडमास्टर को उसकी इस नई आदत से आश्चर्य हुआ और उन्होंने उसे उठा कर गले से लगा लिया।

तब खड़े खड़े ही हरीश ने कहा—'बाबूजी ने कहा है कि आपने मुझे स्कूल से निकाल दिया है।'

हेडमास्टर ने गम्भीर स्वर में कहा—'आज ही ऐसा हुआ है। मुझे खेद है कि मैं तुम्हें पहले से इसके लिए सचेत न कर सका।'

आप मेरे पिता से भी बड़े हैं इसलिए मैं आपको उनसे भी अधिक समझता हूँ। एक प्रार्थना है, क्या आप मुझे फिर ले सकेंगे?' हरीश की आँखों में पानी झलझला आया था।

हेडमास्टर ने हरीश के मन की निराशा समझ ली। उन्होंने कहा—'अगर तुम हमें यह विश्वास दिलाओ कि जैसे विद्यार्थी-जीवन में थे वैसे ही अब भी हो सकोगे।'

हरीश ने तेज़ स्वर में सीधे खड़े होकर कहा—'मैं भगवान की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि इस क्षण से मुझमें, मेरे मन में, कालिख का नाम भी नहीं रहेगा।

हेडमास्टर ने त्योंही कहा—'तब तुम कल से स्कूल आना।'

प्रसन्नता के आवेश में हरीश हेडमास्टर के पैरों पर गिर पड़ा।

घर आकर जब उसने पिता को यह घटना सुनाई तो वे खुशी के मारे हरीश के पास बैठे-बैठे बहुत रात गये तक बातें करते रहे।

एक वर्ष से बाप बेटे अलग अलग थे आज अकस्मात् फिर मिल गये।

* * *

खद्दर के सफ़ेद कपड़े पहने हुए हरीश जब लोचन के दरवाज़े पर आकर रुका तो उसे देखकर किसी को यह भान भी न होगा कि कुछ दिन पहले इसी शहर में वह एक वेश्यागामी और शराबी के रूप में प्रसिद्ध था।

माला ने दरवाज़ा खोला, हरीश अन्दर चला गया और दरवाज़ा पूर्ववत् बन्द हो गया।

कमरे में पहुँचकर हँसते हुए माला ने पूछा 'आज तो कई दिन बाद आये।' इतने दिन तक कहाँ रहे थे?

'ज़रा जी अच्छा नहीं था। और लोचन कहाँ चला गया?' चारों ओर देख कर हरीश ने पूछा।

'अभी तो गये हैं।' कहकर माला ने हरीश की ओर कुरसी बढ़ा दी। हरीश वैसे ही खड़ा माला की ओर देख देख कर मुस्करा रहा था। माला ने उसकी ओर देखा तो उसे भी हँसी आ गई। तब वह बोली—'बैठिए न! खड़े खड़े क्या देख रहे हो?'

'माला देख रहा था।' हरीश ने हँसकर कहा।

'कैसी लगी?' कहकर माला वहाँ से भाग गई। हरीश वैसा ही बैठा हँसता रहा। कुछ मिनट बाद माला मिठाई की तश्तरी और पानी भरा गिलास लेकर वापस आई।

हरीश ने कहा—'आज वही गाना सुनाओ माला।'

'कौन सा?' सहज स्वभाव से माला ने पूछा।

'जतन बताय जइयो।' आँखें बन्द कर हरीश कुरसी के सहारे गर्दन डालकर बोला।

कुछ क्षण पश्चात् सितार की स्वर लहरी के साथ माला की आवाज़ हरीश के कर्ण कुहरों को स्पर्श करके सारे कमरे में गूँज उठी। हरीश तन्मय होकर सुन रहा था। माला गा रही थी—

'जतन बताय जइयो।'

'कैसे दिन कटिहैं ?'.....

गाना समाप्त होते ही माला बोली—'अब आप कविता कहिए।'

कुरसी से उठते हुए हरीश बोला—'एक लाइन सुनाता हूँ बाकी तब सुनाऊँगा जब इसका जवाब दोगी।'

'अच्छा' कह माला भी कुरसी से उठ बैठी।

हरीश बोला—'मेरी आँखों में समाई हो क्यों ?'

माला लाज से सिमट सी गई। हरीश गुनगुनाता हुआ बाहर की ओर चला। दरवाज़ा खोलते ही लोचन अन्दर आ गया। उसने हरीश की कही हुई कविता की पंक्ति सुन ली थी। हरीश को दोनों बाहों में भरकर वह बोला—'शादी करने के लिए !'

हरीश घबराकर बोला—'किसके साथ ?'

लोचन ने धीरे से उसके कान में कहा—'माला के साथ...।'

सिपाही

शहर का सबसे बड़ा चौराहा, उस चौराहे पर सुबह आठ बजे से अपनी ड्यूटी पर आनेवाला वह सिपाही, जिसको देखकर न मालूम क्यों सभी का ध्यान एकबारगी उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। वह कौन होगा, यह एक प्रश्न है जो उसकी ओर देखनेवालों के मस्तिष्क में कुछ क्षण के लिये घूम जाता है।

ख़ाकी वर्दी, लाल पगड़ी, वर्दी के ऊपर सफ़ेद ज़ीन की आस्तीनें, जो हर समय ही इधर-उधर, दायें-बायें उठती-गिरती रहती हैं। देखने में खूबसूरत, हट्टा-कट्टा नवयुवक, भरा हुआ चेहरा, छोटी-छोटी मूँछें, बड़ी-बड़ी आँखें, ऊँचा माथा और रंग गोरा, यही उसका शब्द-चित्र है।

उसकी मुख-मुद्रा सदा ही गंभीर बनी रहती है। उसके चेहरे पर हास्य और चंचलता के भाव का आविर्भाव होते नहीं देखा गया, पर ऐसा मालूम होता है जैसे वह कुछ सोच रहा है। उसके हृदय में कुछ छिपा हुआ है और उसकी आँखें ऐसा कहती मालूम होती हैं जैसे वह जीवन की किन्हीं स्मृतियों के संघर्ष में मौन-भावनाओं के साथ तड़पता रहता था।

* * *

पण्डित व्रजभूषण सरकारी अस्पताल में डाक्टर थे। उन्होंने अपने पसीने की कमाई को अपने और बच्चों के सुखों के लिये व्यय किया

था। जोड़कर रखना और तकलीफ़ उठाना या खर्च कम कर देना वे हितकर नहीं समझते थे। फिर भी गृहिणी जो कुछ इकट्ठा कर लेती थीं, उसे आवश्यकता पड़ने पर पण्डितजी छोड़ते न थे।

पंडितजी की संतान में दो लड़के और तीन लड़कियाँ थीं। बड़ी लड़की की उम्र तेरह वर्ष थी। फिर सब बच्चों की उम्र में साल, दो-दो साल का अन्तर था। सबसे छोटी लड़की की उम्र उस समय केवल दो मास थी जब कि पण्डितजी एक धूर्त के चक्कर में फँस गये, जिसने कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं जिनसे लाचार होकर उन्हें उसके लड़के से अपनी लड़की की शादी कर देनी पड़ी। लड़का दसवें दर्जे में पढ़ता था, पर उसका चालचलन अच्छा न था। लड़के के चचा कचहरी में क्लर्क थे और पिता का पेशा पण्डिताई करना था।

लड़की की शादी के छः मास बाद ही पंडित ब्रजभूषण की मृत्यु हो गई। छोटी लड़की की उम्र उस समय आठ मास थी और बड़ा लड़का दसवें वर्ष में पड़ा था।

रिश्तेदारों ने अपना कर्तव्य खूब अच्छी तरह से निभाया। जो इच्छा हुई इधर-उधर करके माँ से ठगा। बच्चों के मामा ने आकर अपनी बहन को सांत्वना दी और अपने मन में अपना कर्तव्य निश्चित कर वे चले गये।

बड़ी लड़की का गौना माँ ने अपने पास से जो कुछ था बेंच-बाँच-कर लड़के वालों के ज़िद करने पर कर दिया। गौने के कुछ ही दिन बाद लड़की की मृत्यु हो गई। लड़के पढ़ने लगे और मामा ख़र्च भेजने लगे। समय बीत चला। जीवन की नितान्त संभव वास्तविकता, परिवर्तन, सभी में होना सम्भव है। पं० ब्रजभूषण की विधवा पत्नी ने हर तरह के कष्ट सहन कर बच्चों को पाला-पोसा।

बड़ा लड़का जब दसवें दर्जे में था तब उसकी छोटी बहन का भी देहावसान हो गया। परिवार का दिन पर दिन इस तरह घटते जाना माँ

बेचारी भविष्य पर आँखें पसारे देखती रही। उसने अपना विश्वास केन्द्रित रखा। विचारों की सार्थकता पर वह दृढ़ रही।

दिन बीतते देर नहीं लगती। बड़े लड़के ने दसवाँ दरजा पास कर लिया। माँ ने एक बार अपने विक्षिप्त हृदय की बूढ़ी श्वासों में आशा का झिलमिलाता संदेश पाया। लेकिन उसकी सारी आशा और सारा विश्वास संसार की निष्ठुरता और कठोरता के पहलू में मिलकर विलीन हो गये।

फिल्म कम्पनियों, अँगरेज़ी दफ़्तरों, और साधारण आफ़िसों के दरवाज़ों पर "नो वेकैंसी" के चिरपरिचित बोर्डों से लड़कों की सूखी श्वासें टकरा-टकरा कर अश्रुओं के बीच बिखरने के लिये छटपटाने लगीं। आत्मघात के प्रयत्न में उसे सफलता नहीं मिली। तब वह हृदय की हूक और जीवन की साधना में अपने कर्म की गति पर विश्वास करके क्षेत्र में आया।

कोशिशों के बाद, भविष्य की आशा पर, पुलिस कान्सटेबिल के लिये वह तेरह रुपए पर ट्रेनिंग के लिये चला जाता है। आठ महीने की ट्रेनिंग के बाद वह पूर्ण रूपेण सिपाही बन कर अपने कैम्प से निकलता है, वेतन उसका अठारह रुपये कर दिया गया।

वह व्यक्ति जो शान का खाता पहिरता रहा हो, और मनमाना ख़र्च करता रहा हो। यदि जीवन के किन्हीं दुर्दिनों में रूखी-सूखी रोटियों पर ही गुज़र करे तब उसके हृदय से निकली हुई श्वासों में उलझे हुए शाप, तड़पती हुई आहें, और संसार के प्रति अविश्वास के संदेश किसके हृदय को विदग्ध न कर देंगे।

वह अपनी ड्यूटी पर चुपचाप आता और ठीक समय पर वहाँ से हट जाता है। उसे गत दिनों के वे सुखदायी क्षण याद आते हैं जब वह आराम से बैठा उन्नत भविष्य की कल्पना के महल बना रहा था। आज वह सब एक याद मात्र है लेकिन आज तो उसे जीवन का सत्य लेकर कर्मक्षेत्र में चलना था। वह चलेगा उसे चलना जो है!

संसार में पाप कहे जानेवाले भी कुछ कर्म हैं, परन्तु मनुष्य वह है जो अपने पैरों की मज़बूती और अपने आत्मिक व मानसिक विश्वास पर भरोसा करके जीवन के ऊबड़-खाबड़ और कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलकर अपनी मानवता के वास्तविक सिद्धान्त में सफलता प्राप्त करे।

* * *

वह युवक सिपाही रोज़ अपने सामने से हरे रङ्ग की एक कार को 'पास' करता है। दस बजते ही वह कार एक लड़की को लिये वहाँ गुज़रती है। ड्राइवर कार चलाता है। लड़की की उम्र सोलह से अधिक न होगी। देखने में वह सुन्दर है। चंचलता से परे वह अपने जीवन के विश्वास को नहीं समझती—ऐसा उस सिपाही का अनुमान है। संभव है उसका वह अनुमान ठीक न हो, पर उस युवक को अपनी भावनाओं पर विश्वास था।

एक हफ्ते से वह उस लड़की की ओर विशेष ध्यान देने लगा था। मन में वह उस लड़की के सम्बन्ध में कुछ सोचता है। लड़की स्कूल जाती है और वह सिपाही उसकी कार को पास कर देता है।

उसे अपने अधिकारों से कुछ लाभ अवश्य उठाना चाहिये, यह विचार आते ही उसने दूसरे दिन से अकारण ही कार को कुछ सेकिंड तक रोकना शुरू कर दिया। जब अधिक भीड़ होती तब तो वह उस कार को कई कई मिनट तक अपने सामने रोक रखता और न मालूम किन भावनाओं के प्रवाह में पड़ कर वह उसकी ओर एकटक देखता रहता। वह अपने हृदय में कुछ अजीब सा अनुभव करता। उसे ऐसा मालूम होता जैसे उसके मन के एक कोने में अनजानी सी सिहरन हो रही है।

उस लड़की ने भी उसे कई बार देखा और तब दोनों एक दूसरे को देखने लगे। कभी-कभी लड़की पर यह जाहिर करने के लिये कि वह अंग्रेज़ी भी जानता है, ड्राइवर को अंग्रेज़ी में डाट भी देता, तब

लड़की भी यही ज़ाहिर करने के लिये मुस्करा कर उसे अंग्रेज़ी में ही नम्र उत्तर देती।

एक बार वह लड़की कई दिन तक दिखलाई नहीं दी। जब कुछ दिन बाद वह आई तब सिपाही ने उससे इतने दिन तक न आने का कारण पूछा।

जहाँ अपना मन होता है, एक की कोमल भावनायें दूसरे को जब अपनी मूक भाषा में अपनी स्वार्थरहित मनोवृत्ति का परिचय देती हैं, वहाँ एक आकर्षण पैदा हो जाता है जो एक को दूसरे की ओर बहुत ही पास लाकर छोड़ देता है। लड़की को ऐसा मालूम हुआ जैसे उसका उस सिपाही से बहुत पुराना परिचय है, और तभी वह अपने मन की भावनाओं के अतिरिक्त उससे इस तरह बोली जैसे उनमें कोई परायापन है ही नहीं। उसने सिपाही को अपने न आने का कारण बीमारी बताया। सिपाही ने हार्दिक खेद प्रकट किया।

सिपाही का हाथ उठा और कार पश्चिम दिशा के प्रांगण में अदृश्य होगई.....।

उधर एक अंग्रेज़ की कार से एक ख़ाली ताँगा भिड़ गया। सिपाही ने समय की कमज़ोरी से बचने के लिए, यह जानते हुए भी कि ताँगे वाले का अपराध कम है, उसी को डाट कर अलग कर दिया। तब गुस्से में भरे हुए अंग्रेज़ से ताँगे वाले की गलती के लिये क्षमा माँगी। वह अंग्रेज़ सिपाही का इंगलिश प्रेम देखकर प्रसन्न हो गया और उसने यहाँ तक किया कि अपनी ग़लती स्वीकार कर ली।

घंटाघर की घड़ी की सुई जब बारह पर पहुँची तब वह वहाँ से हट गया।

* * *

उस लड़की का नाम था ऊषा—

दिन बीतते गये, ऊषा और सिपाही एक दूसरे की ओर आवश्यकता से अधिक आकर्षित हो चुके थे।

धीरे धीरे एक दूसरे के हाथों में पत्र पहुँचने लगे। फिर एकांत पार्कों में मिलन होने लगा और अन्त में उन्माद का एक तेज़ झोंका आया, जिसके साथ दोनों ने ही जीवन के अटूट बन्धन में बँधकर एक हो जाने का निश्चय किया। प्रणय की यह प्रारम्भिक गति इतनी स्थिर हो गई कि वहाँ जगत् की कठोरता कोई कम्पन पैदा न कर सकी। ऊषा ने समाज की पर्वाह न करके सिपाही के साथ ही शादी करने का प्रस्ताव किया।

महीने की पहली तारीख़ थी।

जगमग शहर के किनारे, बिजली के पीले, लाल और हरे लट्टुओं से घिरे हुए उस सिनेमा भवन के बाहर काली सर्ज का सूट पहने, सिर पर नाइट कैप रखे और हाथ में पतली सी एक छड़ी लिए सिपाही स्थिर खड़ा चारों ओर न जाने क्या देख रहा था।

घड़ी की सुई साढ़े छः से कुछ ही आगे बढ़ी थी, कि एक कार सनसनाती हुई आई और मोटर-गैरिज के सामने जाकर रुक गई। उसमें से दो समवयस्क युवतियाँ उतर कर टिकिट-घर की ओर बढ़ीं। सिपाही उन लड़कियों को देखते ही टिकिटघर के सामने जा पहुँचा और सेकिंड क्लास के तीन टिकिट देने के लिए कहकर एक नोट बढ़ा दिया। तब तक वे लड़कियाँ भी खिड़की के सामने आगई थीं। उनमें से एक सफ़ेद जार्जेट की साड़ी पहने थी, सिर के बड़े से जूड़े में लाल गुलाब के दो फूल लगे थे, कानों में लम्बे-लम्बे इयरिंग झूल रहे थे, आँखों पर सुनहरी कमानी का चश्मा चढ़ा था। दूसरी लड़की की साड़ी में ही विशेष अन्तर था। उसकी साड़ी का रंग सफेद नहीं लाल था लेकिन देखने में यही अधिक सुन्दर मालूम होती थी।

सिपाही खिड़की पर खड़ा रहा। फिर टिकिट लेकर सिर से टोप उतारा और पीछे घूम कर बड़ी प्रसन्नता से प्रेम भरे स्वर में कहा—'ऊषा।'

सफ़ेद साड़ी वाली लड़की टिकिट घर की ओर बढ़ी, तभी लाल साड़ीवाली लड़की हँसी और सिपाही से कहा, 'अरे तुम.....।'

'आओ मैंने टिकिट ले लिये हैं।'

सफ़ेद साड़ी वाली लड़की टिकिट लेते लेते वापस आ गई।

ऊषा ने कहा—'तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि हम लोग सिनेमा आ रहे हैं?'

'मालूम होना था इसीसे होगया, अब चलो अंदर बैठें और हाँ, तुम्हारे साथ कौन है?'

'नीलिमा, आओ इनसे तुम्हारा परिचय करा दें।' तब सिपाही की ओर देख कर ऊषा ने कहा—'देखो ये हमारी क्लास-फ़ैलो हैं मिस नीलिमा बनर्जी'। फिर नीलिमा से कहा—'और ये हमारे टीचर हैं मिस्टर विपिन बिहारी.....।'

नीलिमा और सिपाही ने हाथ बढ़ा दिये। फिर सिपाही ने कहा—'तुमसे, ओ! नो, एक्सब्यूज़ मी, आप से मिल कर बड़ी खुशी हुई।'

नीलिमा ने हँस कर कहा 'लेकिन मुझसे ज़्यादा नहीं हुई होगी।'

तब एक बार ज़ोर से हँस कर वे तीनों गेट की ओर बढ़ गये।

सिनेमा हाल अभी फुल नहीं हुआ था। एक किनारे की सीटों पर तीनों जाकर बैठ गये। ऊषा बीच में बैठी थी, सिपाही और नीलिमा उसके इधर उधर की कुर्सियों पर बैठे।

खेल शुरू हुआ। सिपाही ने ऊषा की कलाई अपने हाथ में ले ली और धीरे से कहा, 'ऊषा, मेरी ऊषा.....।'

ऊषा तन्मय होकर बोली—'सिपाही, मेरे सिपाही...।'

नीलिमा की दृष्टि परदे पर थी, एक बार उधर देखकर ऊषा ने सिपाही से कहा—'तुम आज दिखाई क्यों नहीं दिए थे?'

'आज मेरी छुट्टी थी।'

'लेकिन तुम यहाँ कैसे आ गए।'

तुमने कहा था, इस खेल को देखने के लिये मैं कल भी यहाँ आया था, पर तुम आईं ही नहीं कल । आज भी न आती तो शायद न मिल पाते ।'

'क्यों...'

'मुझे इंस्पेक्टरी के ट्रेनिंग के लिये लिया गया है। कल दोपहर को चला जाऊँगा ।'

'अभी तक क्यों नहीं बताया था... ?'

'यों ही ।'

'तो क्या सचमुच तुम चले जाओगे ?'

'हाँ, जा रहा हूँ'

'फिर मैं ?'

'तुम क्या ! घबराती क्यों हो तुम ?'

'फिर कब आओगे ?'

'दो साल के बाद... ।'

'दो साल के बाद...!'

'हाँ क्या हुआ ? मैं तुमको चिट्ठी डालूँगा, फिर देखो मैं बड़ा आदमी हो जाऊँगा—तुमसे शादी करने में भी कोई अड़चन नहीं पड़ेगी, और फिर हम दोनों मज़े में रहेंगे ।'

'चिट्ठी डालोगे न ? देखो भूल मत जाना । तुम्हारे जाने के बाद बस चिट्ठियों की प्रतीक्षा में ही दिन काटूँगी... ।'

दो गरम आँसू ऊषा की आँखों से ढलक कर सिपाही के हाथ पर गिर पड़े । तब सिपाही ने उसकी ओर आश्चर्य से देखकर कहा—"राम-राम रोती हो, कोई इस तरह रोया करता है भला ?"

"तुम भूल तो न जाओगे ?"

"तुम्हें भूलने की बात तो ऊषा, इस मन में कभी उठ ही नहीं सकती । तुम तो मेरे रोम-रोम में बसी हो । तुम्हें कहीं भुलाया जा सकता है !"

"मैं तुम्हारे बिना जी नहीं सकती, तुम मेरे देवता हो।"

"देखा तुमने ऊषा ?" नीलिमा चित्र को देख रही थी। तभी एक दृश्य विशेष की ओर निर्देश कर उसने ऊषा से कहा। सकपका कर परदे की ओर देखकर ऊषा ने कहा—"देख तो रही हूँ.....।"

* * *

"नीलिमा मेरी एक चिट्ठी आई है, हेड मिस्ट्रेस ने मुझे बदचलन कहा है। वे उस चिट्ठी को पिताजी के पास भेजने को कहती हैं। समझ में नहीं आता क्या करूँ.....?"

"किसकी चिट्ठी है ?"

"है किसीकी.....।"

"आख़िर मुझे क्यों नहीं बतातीं ?"

"तुम्हें बता तो दिया था, उन्हीं की है जो उस दिन सिनेमा में मिले थे ?"

"अच्छा, मास्टरजी की चिट्ठी आई है, तो उसमें क्या लिखा है उन्होंने ?"

"पता नहीं क्या लिखा है। पर मिस्ट्रेस कहती हैं उसमें प्रेम की बातें हैं.....।"

"तो मास्टरजी से तुम प्रेम करती हो !"

"क्या वे और किसी पते पर चिट्ठी नहीं डाल सकते थे, जो तुम्हें मिल जाती ?"

"लेकिन उन्हें क्या मालूम था दूसरा कोई पता। न मैंने ही बताया था।"

"तब जो किया है भोगो। मैं क्या बताऊँ ?"

"तुम मेरी फ्रंड हो। मेरे दुःख में तुम्हें दुःखी होना चाहिए नीलिमा ! बोलो न, अब क्या करूँ ? कहीं रिस्टीकेशन हो गया तो ?"

"जो होना होगा वह तो होगा ही, पर तुम इतनी चिंता मत करो,

कि रिस्टीकेशन हो जायेगा। रिस्टीकेट करने की हिम्मत नहीं है। हम सब स्ट्राइक कर देंगी अगर उन्हीं ने ऐसा किया तो, समझीं ?"

"और पिताजी से कहा तो ?"

"....."

"तुम किसी तरह मिस्ट्रेस से कहकर वह चिट्ठी दिला दो बस।"

"वे दे नहीं सकतीं, ऊषा।"

"चलो तो एक बार उनसे पढ़ने के लिये ही माँग दो।"

ऊषा और नीलिमा स्कूल गार्डन से निकलकर हेड मिस्ट्रेस के कमरे में चली गईं।

ऊषा को देखते ही मिस्ट्रेस ने कहा—"तुम फिर आ गईं। मैं कहती हूँ तुम्हें वह चिट्ठी नहीं मिल सकती। तुमने हमारे स्कूल को बदनाम करने की ठानी है।"

"दीदीजी, माफ़ कर दीजिए। यह पहली ग़लती है।"

"पहली ग़लती है। तुम जाने कब से क्या कर रही होगी, आज तो यह तस्वीर सामने आई है।"

"आप कुछ भी कहें पर आप मेरे मन की बात जान भी पातीं तब था।"

"मुझे सिखाने आई है, निकल जाओ कमरे से बाहर।"

"लेकिन उसकी बात भी तो सुन लीजिए एक बार।" नीलिमा ने कहा।

"तुम उसकी, बदमाश लड़की की, सिफ़ारिश लेकर आई हो, नीलिमा। मैं कहती हूँ बाहर जाओ।"

"आप हमारी चिट्ठी नहीं देंगी क्या ?"

"नहीं देंगे, सौ बार कह दिया नहीं देंगे, नहीं देंगे।"

"लेकिन आपको वह चिट्ठी रखने का कोई भी अधिकार नहीं है।"

"मुझे क्या अधिकार है यह बता दूँगी।"

"लेकिन मिस्ट्रेस, आप पछतायेंगी।" नीलिमा बोली।

"मैं पछताऊँगी! तुम निकल जाओ, अभी जाओ यहाँ से।"

"मैं एक्शन लूँगी मिस्ट्रेस, आप ग़लती पर हैं।" ऊषा ने ज़ोर से कहा।

"तुम जाओ यहाँ से।" मिस्ट्रेस झल्ला उठीं।

* * *

तीन महीने बाद एक अख़बार का समाचार—

'शादी की रात को रायबहादुर हीरालाल कपूर की लड़की का आत्म-घात।'

हिंदू-समाज की नीचता—प्रेम की धधकती चिता पर एक नवबाला की आहुति।

कल रात को जिस समय महिला विद्यालय के एफ़० ए० क्लास की छात्रा कुमारी ऊषा कपूर की शादी होने जा रही थी, उसने हीरे की कनी चाटकर आत्म-घात कर लिया। लाश के पास तीन पत्र पाये गये हैं, जिन्हें हूबहू नीचे दिया जा रहा है।

पहला पत्र—

मेरे सिपाही,

तुम्हारी चिट्ठी आई थी। वह मुझे दी नहीं गई। मेरी शिकायत पिताजी से की गई थी। पिताजी ने मुझे स्कूल से निकाल लिया। संभव है, उन्होंने तुम्हें भी कोई पत्र डाला हो। आज मेरी शादी होनेवाली थी, लेकिन हिंदू स्त्री के लिए धार्मिक ग्रंथों में एक ही बार वर चुनने की आज्ञा है। वह मैं तुम्हें चुन चुकी हूँ। मैंने माताजी से कहा था, पर वे मुझे पागल कहने लगीं। तुमसे मेरी एक प्रार्थना है, तुम मुझे भूल जाना और अपनी शादी कर लेना।

दूसरी बात यह है कि यदि तुम कर सको तो हेड मिस्ट्रेस को स्कूल

से निकलवा देना। उसने ही हमारे दिल की दुनियाँ उजाड़ी है। उसी ने मेरे सुखों को मिट्टी में मिला दिया है और मेरी मृत्यु का पाप उसी पर पड़ेगा—यह मुझे विश्वास है।

तुम मेरे देवता हो। मैं वहाँ भी तुम्हारी ही पूजा किया करूँगी।

बिदा! तुम्हारी ही—'ऊषा।'

दूसरा पत्र इस प्रकार था:—

नीलिमा,

मैं जा रही हूँ। कहाँ और क्यों यह तुम जानती हो।

तुमसे एक प्रार्थना है। तुम हेड मिस्ट्रेस को यह सब बता देना। सब बहनों से भी कह देना मेरी दर्द भरी दास्तान। बस। तुम्हारी—'ऊषा।'

तीसरा पत्र पिता के नाम था—

पिताजी,

आपने अपनी आबरू और समाज के डर से अपनी पुत्री की लाश अपने हाथ से उठाने का श्रेय प्राप्त किया है। आप यदि किसी को प्रेम करते तो जानते प्रेम क्या है? आपसे एक ही बात कहनी है—मेरे सिपाही की शादी करा देना उसे दुःख न हो।

आपकी नीच पुत्री—'ऊषा।'

विराम

प्रोफ़ेसर अतुल का मकान खोजने में विजय को अधिक परिश्रम न करना पड़ा वह सीधा मुख्य द्वार पर पहुँच गया। मकान के चारों ओर बना छोटा-सा बग़ीचा उस लाज भरी साँझ में शांत था, जैसे किसी की स्मृति में अधीर होने के बाद विवशता उसे घेरे हुये हो।

कॉल बेल पर उँगली रखने से कुछ ही क्षण पहले उसकी दृष्टि बग़ीचे के छोर पर खड़े एक सज्जन पर पड़ी। वह ठिठका और तब तुरन्त ही उस ओर बढ़ा। पास आकर जब उसने अपने अभिवादन का उत्तर पा लिया तब नम्रता से पूछा—क्या, आप ही को प्रोफ़ेसर अतुल कहते हैं?

जी नहीं, मैं उनका बड़ा भाई हूँ; वे आजकल यहाँ नहीं रहते, उनका ट्रान्सफ़र हुए कई मास हो गए हैं।—अतुल के भाई ने कहा।

विजय ने कहा, जी, मैं बाहर से आया था। उनसे मुझे कुछ ज़रूरी काम था। क्या वे सपरिवार यहाँ से गए हैं?

'जी हाँ, वाइफ और बच्चा भी साथ है' वे बोले।

'क्या आप उनका पता देंगे?' विजय ने कहा और जेब से डायरी और क़लम निकाल ली। एक बार अतुल के भाई ने उसे ध्यान से देखा। और तब पता बता दिया।

विजय पहली ही ट्रेन से अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर रवाना हो गया।

* * *

विजय की आयु अट्ठाइस वर्ष से अधिक नहीं है। उसकी देह का ढलाव आकर्षक है, रंग गोरा है, असुन्दरता नाम की कोई विशेष बात उसके चेहरे पर नहीं थी, फिर भी वह सुन्दर न था किन्तु उसकी आँखें ऐसी थीं कि देखनेवाला उसके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था।

संसार में कहीं उसका कोई नहीं है जब ऐसा विचार उसके मन में हाहाकार करने लगता, तभी सहसा स्मृतियों के विस्तृत पन्ने पर रजनी की धुँधली तसवीर गहरी होकर हर बार उसके मन में आती और भावुक भावनाओं की गहराई में उतरती जाती। और वह बस, एक उसी रजनी की साधना में, एक उसी की याद में, उसी के मोह में अपने जीवन को बड़ी कठिनता से क़ायम रख सका है, अपने चरित्र पर गर्व कर सका है। और एक रजनी के लिये ही वह अकेला है।

कई वर्ष पहले के चन्द दिन आज भी उसके नेत्रों की पुतलियों पर तैर रहे हैं। वह आँखें मीचकर घण्टों बैठा-बैठा उन दिनों के एक-एक क्षण को रोज़ याद कर लेता है। वह सोचता है, अन्यथा उसकी साध के वे मीठे क्षण कहीं खो न जाएँ। उन्हें सजा के रखना ही उसका एक ध्येय रह गया है। वह सोचता है, चाहे दुनिया उसे छोड़ दे पर रजनी उसे न छोड़े। पुरुष विजय, रजनी नाम की नारी को सहारा मानता है। यही उसका जीवन है, यही उसकी हार है और यही उसकी सबसे बड़ी जीत है।

एक दिन उसका जी अच्छा न था, एकन्त कमरे में पड़ा-पड़ा वह सोच रहा था कि जो रजनी आज उसमें साकार हो गई है, उससे अलग होकर वह कैसे जीवित रहेगा? और जब वह लेटा-लेटा रोने लगा, तभी रजनी वहाँ आ गई, पास ही बैठ गई थी—फिर कहा था—तुम पुरुष होकर रोते हो तो मैं क्या करूँगी?

तब वह रोते-रोते ही कह उठा था—रजनी! मेरा कोई भी नहीं है।

तब रजनी उसके सर पर हाथ फेरती हुई कहने लगी थी तुम ऐसी बातें करके मुझे क्यों दुःख देते हो ? जब मैं मर जाऊँ, तब कहना कि तुम्हारा कोई नहीं है।

और आँसुओं से तर हुई आँखें उठाकर उसने जब रजनी की ओर देखा था, तब रजनी अधीरता से कह उठी थी—तुम रोओ मत, मेरे मन पर तुम्हारे रोने से आघात होता है। तब उसने विजय के सीने पर चेहरा रख दिया, वह सिसकने लगी थी। और विजय वैसे ही लेटा रहा था। रजनी की पीठ पर हाथ रखकर कहा था, तुम क्यों रोती हो ?

रजनी रोती ही रही थी और विजय उसके सिर पर हाथ फेरता रहा था। तब विजय धीरे से उठकर बैठ गया था, रजनी को भी बग़ल में बैठा लिया था और कहा था—मेरे सिर में दर्द हो रहा है।

तब तकिए का सहारा लेकर वह बैठ गई थी और विजय का सिर गोद में रखकर न जाने कब तक दबाती रही थी। फिर कहा था, अगर मेरी सगाई न हुई होती तो मैं समाज का विरोध करके सदा को तुम्हारी हो जाती। और विजय इस सम्बन्ध में कुछ कहकर रजनी को कर्त्तव्य की ओर से गुमराह करना नहीं चाहता था। तब वह बोली थी—फिर भी हमारी आत्मा का सम्बन्ध अटूट है यह न भूलना।

और विजय उस क्षण के सुख पर आज भी लाख जान से निछावर है।

एक दिन जब उसका स्वास्थ्य गिरने लगा था, तब उसकी चारपाई पर लेटे-लेटे रजनी कहने लगी थी—तुम यों घुट घुट के क्यों जान देते हो! मैं भी तो हूँ, मुझे क्यों नहीं देखते ? कभी न कभी हम ज़रूर मिलेंगे, और एकाकार होकर मिलेंगे। फिर क्यों तुम इतने अधीर होते हो! तुम तो समझदार हो, आशावादी बनो।

तब वह सोचने लगा—सात वर्ष ! सात वर्ष हो गये उन बातों को;

रजनी अपने पति के पास आनन्द से रह रही है, उसके बच्चा है, सब सुख उसे उपलब्ध हैं। वह अब तो उसे भूल भी गई होगी।

गाड़ी खड़ी हुई और आँखें पोंछता हुआ, सूटकेस उठाकर जगमगाते हुए प्लेटफ़ार्म पर उतर पड़ा। उस समय पाँच बज रहे थे। सरदी तेज़ थी। आसमान अँधेरा था।

'टी-स्टॉल' पर आकर उसने एक ओर सूटकेस रख दिया और कई प्याले चाय पीने के बाद सिगरेटें भी कई पी डालीं। लगभग एक घण्टा इस तरह बीत गया। सुबह की सफ़ेदी गहरी हो चली थी और मुसाफ़िर शहर जाने लगे थे। विजय वहीं बैठा-बैठा सोच रहा था कि रजनी ने पहचाना और पहचानने के बाद भी यदि उसके मन में उसके प्रति अपनापन न जगा तो वह क्या करेगा। जिसके लिये वह जी रहा है, वही ठुकरा देगी तो फिर उसे कहाँ स्थान मिलेगा? तब वह कहाँ जायेगा? जिसकी याद में वह तड़प-तड़पकर जी रहा है। आज जब वह उसके पास जा रहा है, तब वह न अपनाना चाहे या न अपना सके तो सिवाय इसके कि वह आत्म-घात कर लेगा, इसे छोड़ उसके मन में अन्य कोई भी भावना न आई।

जिस समय ताँगा प्रोफ़ेसर अतुल के द्वार पर जाकर रुका, उस समय सात बजे थे। ताँगे से उतर कर विजय उस छोटे से खुशनुमा बँगले के दरवाज़े पर जा खड़ा हुआ। उसी समय माली दो गुलदस्ते हाथ में लेकर उधर आया तो उसने पूछा कि क्या प्रोफ़ेसर साहब हैं? तो माली ने कहा—नहीं, अभी पन्द्रह मिनट पहले ही मजिस्ट्रेट साहब के लड़के को पढ़ाने गये हैं। साढ़े आठ बजे तक पढ़ाकर नौ बजे लौटेंगे और फिर ग्यारह बजे कालेज चले जायँगे।

तब विजय ने पूछा कि क्या बहू जी हैं? तो माली ने उसकी ओर एक बार ध्यान से देखकर कहा—अभी जागी हैं, कुछ पढ़ रही हैं। तब एक बार विजय के मन में जाने क्या शंका जागी कि उसने पूछा—उनका

नाम रजनी ही तो है न !' माली ने कहा—'जी हाँ।' और तब विजय ने माली के हाथ पर रुपया रखकर कहा—'ताँगे से सामान उतरवा लाओ। छः आने उसे दे देना।'

माली ने रुपया लेते हुए कहा—बहूजी छत पर अपने कमरे में ही हैं—

'ज़ीना किधर है ?' विजय ने पूछा।

माली ने कहा कि दालान में ही है। सीधा मलकिन के कमरे के सामने ही पहुँचता है।

विजय दालान में पहुँचा और धीरे-धीरे सीढ़ी चढ़ने लगा। ऊपर पहुँचा, सामने के कमरे का दरवाज़ा खुला था। एक चलती दृष्टि चारों ओर डालकर उसने कमरे में बिछे एक पलङ्ग पर रजनी को पड़े देखा। चेहरे पर किताब रखे थी। किताब देखकर विजय को आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। वह उसी की लिखी किताब थी, जिसमें उसने अपनी संघर्षमयी ज़िन्दगी का कलापूर्ण वर्णन किया था।

वह धीरे-धीरे कमरे में जा पहुँचा। रजनी के पलङ्ग के पाँयते जाकर खड़ा हो गया और धीरे से कहा—'रजनी !'

रजनी ने चौंककर किताब अपने चेहरे से हटाई। विजय ने देखा उसका चेहरा आँसुओं से भीगा हुआ है। विजय शीघ्रता से उसके पास आ खड़ा हुआ। रजनी आँसुओं से ढँकी आँखें पोंछकर उसे देख रही थी, एकाएक बैठ गई और वैसे ही बैठी देखती रही, बोली—कुछ नहीं। सिर को घुटनों में छिपाकर फिर रो पड़ी।

विजय के मन में जाने कैसी व्यथा गूँजने लगी। वह बोला—माफ़ कीजिये मैं बिना पूछे आ गया। मैं समझता था, आप मुझे पहचान लेंगी।

और विजय घूम कर कमरे के दरवाज़े की ओर बढ़ा। उसे लग रहा था कि संसार की सारी विवशता उसी के कन्धों पर आ पड़ी है। तब रजनी ने सिर उठाया। वैसी ही अस्त-व्यस्त अवस्था में जल्दी से उठ

बैठी और विजय के पास आकर खड़ी होकर बोली—मेरे मन को तुमने आज तक नहीं समझा। मैं भला तुम्हें न पहचानूँगी। सात वर्ष तो क्या सात युग बीतने पर भी तुम आते तो भी सारी दुनिया के सामने मेरा रोम-रोम तुम्हें पहचान लेता।'

विजय खड़ा हो गया था, तभी माली ने ज़ीने की सीढ़ी पर आकर कहा—'सामान आ गया साहब, बाक़ी के पैसे ये...।'

पास आकर माली खड़ा हुआ कि विजय बोला—'जाओ, पैसे तुम रख लो।'

माली चला गया, तो रजनी बोली—'और जो तुम सात वर्ष बाद आकर भी यों चले जाने की धमकी देते हो तो मैं तुम्हारे पाँवों पड़ती हूँ, जाने का नाम न लेना अभी।' और रजनी विजय के चरणों में लिपट गई। विजय ने उसे उठाने की चेष्टा करते हुए कहा—'कोई देखेगा तो क्या सोचेगा। उठो।'

पर रजनी उठी नहीं, वैसे ही बोली—'तुम मेरा सुख न छीनो। मुझे कुछ देर तो यों ही रहने दो। कोई देखे तो देखने दो।'

तब विजय मुस्कराकर बोला—'मैं अभी जा तो रहा नहीं हूँ। अभी देखो रात भर का सफर करके आ रहा हूँ, चाय भी न पिलाओगी?'

तभी रजनी अचकचाकर उठ बैठी। विजय हँस पड़ा तो लजाकर रजनी ने कहा—'तुम मुझे खूब सता लो।' और तब बंशी को आवाज़ दी। बंशी आयी तो चाय और नाश्ते के लिये कहकर वह विजय का हाथ पकड़कर बग़लवाले छोटे कमरे में उसे ले गई। और बोली—'यह ओवरकोट तो उतार दो।'

विजय ने कोट उतार कर एक कुरसी पर डाल दिया और स्वयं पास पड़े काउच पर बैठ गया। रजनी भी उसके पास बैठ गई। विजय का हाथ अपने हाथों में लेकर बोली, 'तुमने कभी भी मुझसे मिलने की कोशिश नहीं की!'

'और तुमने तो ख़त भी डालना उचित न समझा।' विजय ने कहा, तो रजनी बोली—'तुम्हारे नाम न जाने कितने पत्र पोस्ट किये पर वे सब वापस आये। मेरी समझ में नहीं आता कि जब मैं तुम्हारे इतने पास हूँ तो क्यों अपना जीवन बरबाद करते हो?'

'मैं तुम्हारे लिये ही तो जी रहा हूँ रजनी।' विजय ने धीरे से कहा।

'और तुमने उस किताब में मुझे रुलाने के लिये यह क्या-क्या लिख मारा है। आज तुम न आते तो मुझे बुख़ार आ जाता रोते-रोते।'

'तुम्हें कभी मेरी याद आती थी?' विजय ने पूछा।

'क्या तुम मुझ पर सन्देह करते हो?' रजनी ने कहा और विजय के कन्धे के सहारे बैठ गई। विजय ने उसकी केश-राशि पर ओठ लगा दिये।

रजनी वैसे ही बोली—'मैंने तुम्हारी सब बातें तुम्हारी नई किताब से जान ली हैं। तुम अगर शादी कर लेते तो शायद तुम्हें शान्ति मिलती।'

'एक और का जीवन भी अपने साथ ही बरबाद कर देता?' विजय ने कहा।

रजनी बैठी-बैठी रोने लगी, सिसकने लगी और दोनों हाथों से विजय को भरकर अपने मुख को उसकी गोद में रख दिया। विजय ने उसके बालों पर हाथ फेरते हुए कहा, 'क्या हुआ? क्यों रोती हो? आज तो मैं तुम्हारे पास हूँ। उठो, चाय-चाय लाओ जाकर।'

'एक दिन मैं तुम्हें समझाती थी। आज तुम मुझे समझाते रहो, मैं रोती रहूँ इसी में मुझे सुख है।' रजनी ने कहा।

'तो अभी चाय तो पिला दो, देखो, कितनी देर हो गई है।'

रजनी ने मुख उठाया तो विजय ने उसके आँसू पोंछ दिये। कहा—'बड़ी पागल है तू।'

'पागल न होती तो तुम्हारे लिये रात-दिन कैसे रोती?'

'अच्छा, चाय तो मँगाओ।'

'तुम तो मुझे दूर-दूर रखना चाहते ही हो—पहले भी तो यों ही भगा दिया करते थे। तुम्हें कभी मुझसे प्रेम थोड़े ही था। हमेशा बनाते ही रहे हो।'

'नाराज़ क्यों होती हो? क्या यह भी बताने की बात है कि मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूँ। दुनिया में तुम्हारे सिवा मैंने न किसी को चाहा, न किसी को चाहने का प्रयत्न किया।'

नशीली आँखों से विजय की आँखों में झाँककर, बिल्कुल पास खिसककर उसने पूछा—'सचमुच तुम आज भी मुझे उतना ही चाहते हो?'

रजनी ने आँखें बन्द कर लीं और विजय ने उसकी ठुड्ढी ऊँची करके उसके ओठ चूम लिये। रजनी ने एक बार अपने को उसकी बाहों में ढीला छोड़ दिया और फिर तत्काल भाग गई।

आगे-आगे रजनी और उसके पीछे एक युवती चाय की ट्रे लेकर कमरे में आ खड़ी हुई। जब ट्रे स्टूल पर रख दी तो युवती ने नीची नज़रों से एक बार विजय को देखा। तभी रजनी ने कहा—'ए विजय! ये बंशी पूछती थी कि ये कौन हैं?' बंशी लजाकर भाग गई और रजनी हँसती हुई फिर उसके पास बैठकर चाय बनाने लगी।

'तुम्हारा बच्चा कहाँ है?'

नीची आँखों से उसे देखकर उसने कहा—'बच्ची है, शशि नाम है। रात हम सब सिनेमा गये थे, सो अभी तक सो ही रही है। चार साल की तो है ही।'

'प्रोफ़ेसर साहब से कैसी पटती है तुम्हारी?' विजय ने पूछा।

'पटती क्या, वे मेरे स्वामी हैं, मैं उनकी पत्नी हूँ। वे वैज्ञानिक हैं, मैं कला की पुजारिन हूँ, सो वे सफल पति होने पर भी तुम्हारी तरह कवि तो नहीं हैं।' और इतना कहकर वह लाज से सहसा सिमट-सी

गई। फिर कहा—'तुम खाओ-पिओ; बस हर वक्त वे ही उल्टी-सीधी बातें।'

और विजय हँस पड़ा। तभी चार साल की छोटी-सी ख़ूबसूरत बच्ची शशि भागती हुई वहाँ आ रजनी के पास खड़ी हो गई। विजय की ओर दो-तीन बार देखकर उसने पूछा—'ये कौन हैं माताजी?' रजनी ने विजय से कहा—'बताओ न तुम कौन हो? सभी तुम्हारे बारे में पूछते हैं।'

'मैं कोई नहीं हूँ।' विजय ने कहा।

इस उत्तर से शशि को निराशा-सी हुई, विजय ने यह लक्ष किया। उसने शशि को रजनी की गोद से उठाकर चूम लिया और बोला—'मैं विजय हूँ।'

शशि फिर कुछ न बोली।

रजनी ने विजय से पूछा—'साग क्या बनवाऊँ?'

हँसकर विजय बोला—'मैं क्या जानूँ!'

'अच्छा, तुम जाकर नहाओ बक्स की ताली दो तो कपड़े निकाल दूँ।' रजनी उठकर खड़ी हो गई और ताली के लिये उसने हाथ बढ़ा दिया।

पैन्ट की जेब से ताली निकालकर रजनी को देते हुये विजय ने कहा—'मेरा तो कहीं भी मन नहीं लगता, इतने दिन तो सी क्लास के क़ैदियों जैसा जीवन बिताना पड़ा है।'

'तो यहीं रहो न।' कोच के पीछे जाकर चाभी लेते हुए रजनी ने विजय के कन्धों पर हाथ रखकर कहा।

विजय ने एक बार अधीर नेत्रों से रजनी को देखा; तभी वह कहने लगी—'और तुम्हारे बक्स में तो बहुत से तिलस्म होंगे; न जाने किस-किस के प्रेम पत्र, फ़ोटो और निशानियाँ। मैं अभी सब देखती हूँ जाकर।'

असहाय स्वर में विजय ने कहा—'अब उसमें कुछ नहीं है, रजनी। तेरी चिट्ठियाँ, फ़ोटो और वह टूटा हुआ पेन ही मेरे पास है। मेरा वही सब कुछ है—उसी के सहारे तो मैं इतने दिन काट सका हूँ। तुम तो भला मेरा प्रेम समझोगी ही क्या! कहोगी, जिस तरह औरों से मेरी दोस्ती रही है तुमसे भी वैसी ही है। मेरे दिल में लगातार सात वर्ष से यही चाहना रही है कि तुमको किसी तरह अपने मन का भावुक प्रेम समझा दूँ। मैं सात बरस तक निरन्तर दूरस्थ प्रान्तों में आवारे की तरह घूमता रहा हूँ—पर कभी एक क्षण को भी तुम्हारी तसवीर मेरे मन में हल्की नहीं पड़ी।'

और विजय कहता गया—'तुम अपने स्वामी के पास आकर स्वर्ग-जैसा सुख पा रही हो, पर मैंने तुम्हारी याद में अपना जीवन बर्बाद कर दिया। मैं न कुछ काम कर सका, न मैंने अपने जीवन को सही दिशा में मोड़ने का प्रयत्न किया। यह सब तुम्हारे कारण हुआ है, पर मैंने एक क्षण को भी तुम्हें दोषी नहीं समझा।'

रजनी डबडबाई आँखों से आकर उसके पास बैठ गई।

तभी विजय ने कहा—इसीलिये तो मैंने तुम्हें कभी दोषी नहीं समझा। मैंने प्रति दिन जो चाहा है मुझे तुमसे सदा मिला है। इसी से मेरा जीवन चल रहा है, मुझे यही सन्तोष है!

रजनी कुछ बोली नहीं। दोनों हाथों से विजय के हाथ पकड़कर उसकी गोद में मुख रखकर रोने लगी। विजय ने उसके सर पर हाथ रखकर कहा—'फिर रोने लगी। अभी तो मैं हूँ, रोने को बहुत दिन हैं रजनी!'

रजनी ने उसी क्षण कहा—'और तुम्हें भी तो यह व्यथा-भरी बातें कहने का क्या फिर कोई समय नहीं मिलेगा? मुझे सदा तुमने रुलाया है। जब सामने होते हो तो अपना दुःख सुनाकर रुला देते हो और जो इतने दिन सामने नहीं थे तो तुम समझते हो तुम्हारे लिये मेरे मन में

चिन्ता नहीं थी, मेरी आँखों में आँसू नहीं थे; मैं तुम्हारी याद में रोई नहीं !'

तब विजय ने उसे उठा लिया और उसका सिर कन्धे से लगाकर बालों पर हाथ फेरने लगा।

घड़ी की ओर विजय की दृष्टि गई तो बोला—'नौ बजकर दस मिनट हो रहे हैं, अतुल के आने का वक्त हो गया !'

रजनी ने उसे पकड़कर कहा—'आजकल साढ़े नौ पर आते हैं।' तुम अभी न उठो।

'क्यों ?' विजय ने पूछा।

पलक झुकाकर रजनी ने कहा—'मुझे अच्छा लगता है। मैं तुम में लीन होना चाहती हूँ।'

* * *

दूसरे दिन समाचार-पत्रों में छपा:—

'ठीक नौ बजकर दस मिनट पर शहर में भूकम्प के तीन हल्के धक्के महसूस हुए जिससे विशेष क्षति नहीं हुई।'

'अभी समाचार प्राप्त हुआ है कि प्रोफ़ेसर अतुल के ऊपर के कमरे की छत गिर जाने से उनकी धर्म-पत्नी श्रीमती रजनी देवी और प्रसिद्ध साहित्यिक श्रीविजय की असामयिक मृत्यु हो गई। मिस्टर विजय कुछ ही मिनट पहिले वहाँ पहुँचे थे। छत दो-तीन धमाकों के साथ गिरी। सबों की अवस्था से मालूम होता है कि श्रीमती रजनी देवी पहिले ही धमाके से आक्रान्त हो गई थीं और श्रीविजय उनको उठाकर बाहर लाने का प्रयत्न कर रहे थे कि पूरी छत गिर जाने से उन्हें भी जीवन से हाथ धोना पड़ा। बराबर के कमरे में श्रीअतुल की चार वर्ष की कन्या परमात्मा की कृपा से सुरक्षित रही.....।'

पीरू की पूजा

बचपन में जो सुन रखा था उसका अर्थ निकाला कि दीपावली प्रसन्नता और स्वच्छता का त्यौहार है—तन-मन की स्वच्छता और आन्तरिक व बाह्य आह्लाद। लक्ष्मीजी की पूजा—इसलिए कि प्रसन्न होकर वे हमारे किराये के मकान की छत में छेद कर दें और उसमें से हमारे लिए गिन्नियाँ बरसाकर हमें सुख-संपदा का वरदान दे डालें। अध्यापकों ने बताया था कि संसार में पहली बार दिवाली तब मनायी गयी थी, जब परोपकारी राजा रघुकुल तिलक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराज लंका-विजय करके अयोध्या में चौदह वर्ष बाद पधारे थे और उनका राजतिलक हुआ था। यह भी सुना है कि लक्ष्मीजी श्रीविष्णु भगवान् की अर्धाङ्गिनी होती हैं—रामचन्द्रजी, भगवान् का रूप यानी अवतार थे, तो सीताजी लक्ष्मी हुईं ही। इस बात को छोड़कर एक दूसरी बात यह देखी कि पूजा होती है गणेश और लक्ष्मी की—तब समझना पड़ता है कि लक्ष्मीजी गणेशजी की पत्नी थीं—लेकिन यह समझ में नहीं आता कि रामजी के राजतिलक की खुशी मानने की जो परम्परा दिवाली के रूप में हमारे यहाँ चली आ रही है, उससे गणेशजी का क्या ताल्लुक हो सकता है? साथ ही एक प्रश्न यह भी है कि गणेशजी की पूजा हुई सही, पर उनके साथ, उनकी पत्नी के रूप में लक्ष्मी माता को क्यों घसीटा जाता है? तसल्ली के लिए यह सोच

लिया है कि शायद लक्ष्मी माता दो देवियों के नाम होंगे जिनमें से एक भगवान् नारायण अर्थात् मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामजी को सीता के रूप में ब्याही गयी होंगी और दूसरी भगवान् शंकर के चिरञ्जीव श्री गणेशजी को।

जब पहुँचे हुए धर्मवीर इन बातों के बारे में कुछ बताते नहीं तो आगे सवाल उठाने की हिम्मत नहीं होती और जब आपसे आप इन बातों में उलझकर दिमाग़ को ख़राब करने की शक्ति नहीं रहती तो मन ही मन परमपिता परमात्मा से क्षमा माँगकर सोच लेते हैं कि चलो होगा भी, हमें इन सब झमेलों से क्या मतलब। गुठलियों के दाम न सही आम तो हैं।

जो भी हो, लक्ष्मी माता से छुट फोड़कर धन देने की प्रार्थना करते हुए हम अपनी गाढ़ी मेहनत की कमाई में से चार-छः या दस रुपए दीपक, मिठाइयों, खिलौनों आदि चीज़ों को लाने के लिए लक्ष्मी माता के नाम पर कुरबान करके फूल के कुप्पा तो नहीं होते पर किसी तरह सन्तोष कर लेते हैं। समझ लेते हैं कि दिवाली का अर्थ और महत्व कुछ भी हो, मकान का एक नम्बर काइयाँ मालिक पुताई तो करा देता है, घर में कुछ चहल-पहल और रौनक़ तो हो ही जाती है।

सुना है कि दिवाली की पड़वा के दिन जुआ खेलना चाहिये, चाहे लम्बी फ़लास हो, कौड़ियों का गहरा मामला हो, चाहे ताश की गड्डियों पर थोड़े पैसों का हो, चाहे गिन्ती के चक्कर का हो, चाहे दीपकों का ही हो, पर हो जुआ। और जुआ हर भले आदमी को खेलना चाहिए—जो आदमी जुए में हार जाता है उसे साल भर कुछ खास लाभ की आशा नहीं करनी चाहिए। फिर भी इसलिए रोने की ज़रूरत नहीं कि मोहताज होने का डर नहीं है। चूँकि जुआ खेला है और वह भी दिवाली की पड़वा के दिन, इसलिए भला तो होगा ही, पर हारने के कारण कुछ ख़ास नहीं—हाँ, जीतनेवाला साल भर में निज़ाम हैदराबाद, सिंधिया,

जोधपुर नरेश, महाराज अलवर, जयपुर या पटियाला नहीं तो कम-से-कम राजा साहब भिंगा (अवध का एक छोटा तालुक़ा) की हैसियत का तो हो ही जायगा।

सुनी-सुनाई तो कह दी पर भाई मेरे, यह सब भेद कुछ समझ में नहीं आता कि इस सब शुभ लाभ की तलहटी में भेद और भूल-भुलैया क्या है। अपने पुराने अनुभव के मुताबिक़ हम तो दो चार पैसों—हद, दो चार रुपयों से ताश या चक्करवाली बाज़ी खेलते हैं—ज़्यादा ख़र्च भी नहीं और मनोरंजन भी खूब। फिर जीतने की ज़्यादा गुञ्जायश—चाल-बाज़ों से भय भी कम। अटकल पच्चू—कहीं-न-कहीं तो एक के दो और दस के बीस हो ही जायेंगे। ख़ैर साहब, तो सदा दिवाली पर परमात्मा की कृपा से जीते ही हैं—पर नहीं जानता कि किसी साल भी मेहनत कम करनी पड़ी हो और आमदनी ज़्यादा हुई हो। बल्कि पिछले वर्षों से तो यह हाल चल रहा है कि रात को तीन-तीन बजे तक क़लम घिसने पर भी ठीक आमदनी नहीं है—वजह शायद लड़ाई हो पर समझ में नहीं आता कि 'छप्पर फाड़कर देनेवाले' को लड़ाई की क्या अड़चन! आप बीती के अलावा एक दोस्त की ज़बानी सुनी हुई घटना भी लगे हाथ सुन लीजिये—जिस साल लाला घिरऊलाल ने जुए में दस हज़ार जीतकर अपनी दुकान का दुगना माल किया, उसी साल उनकी दुकान में आग लग गयी और लालाजी मोहताज हो गये—अब पता नहीं कि जुए के सगुन का क्या भेद है।

हाँ, हम अलबत्ता यह जानते हैं कि दिवाली आनन्द का त्यौहार है; घर की और मन की सफ़ाई—मतलब पवित्रता और स्वच्छता की बार्निश के लिए नियत किया हुआ वर्ष का एक शुभ और मौसमी दिन। आप चाहें तो इस दिन अपनी नयी फिल्म का, नये मकान का, नयी दूकान का, नयी बहियों का, नई नई पुस्तक का, या किसी ईजाद की हुई चीज़ का 'मुहूरत' चालान, आरम्भ या नामकरण कर सकते हैं।

बादशाह सलामत के जन्म दिन पर, महात्मा गाँधी की वर्षगाँठ पर, या किसी देश पर बरतानवी सरकार के विजयी होने की खुशी में भी दीपक जलाये जाते हैं—अभी कल की बात है, ट्यू निसिया-विजय पर देश भर में वह शानदार दीपावली मनायी गयी थी कि 'इण्डियन मोवीटीन न्यूज़' को उसकी तसवीरें उतारने के लिए चार सौ फाट फ़िल्म का सदुपयोग करना पड़ा होगा।

कुछ भी हो, दीवाली का जो नैतिक अर्थ है, वह ज़रूर महत्वपूर्ण है, लेकिन महत्व मिला हुआ है उसके धार्मिक पहलू को। हम कहते हैं कि हिन्दुओं को दिवाली विरासत में नहीं मिली—हाँ, यह कह सकते हैं कि हिन्दुओं के इस अजीबोग़रीब रौनक़वाले त्यौहार की नक़ल सभी जातियों ने ख़ुशियाँ मनाने के लिए कर रखी है। प्रसन्नता को सब में बाँटनेवाली हर सभ्य जाति खुशी के ख़ास अवसरों पर दीपक जलाकर गर्व का अनुभव करती है और अपने दिल के अरमान पूरे करती है।

हम तो समझते हैं कि जिस दिन भारत के नेता जेल से छोड़े जायेंगे या जिस दिन बरतानिया सरकार लड़ाई जीत जायेगी उस दिन जैसी दीपावली भारतवर्ष में मनायी जायगी वैसी न तो कभी मनायी गयी है और न शायद मनायी जाए। अलबत्ता, भारत के स्वतन्त्र होने पर मनायी जा सकती है।

* * *

आप यक़ीन मानिए कि कल हम दिन में सो गये थे। कारण यह था कि मकान की सफ़ाई-पुताई कराने में कुछ ऐसे विज़ी रहे कि थकान मिटाने के लिए आप-से-आप नींद आ गई। परियों की बस्ती से आयी हुई मीठी नींद में अफ्रीकन भूतों की रूहें शायद इसलिए डिस्टर्ब न कर सकीं कि उत्साह से दीवाली मनाने का हौसला हमारे दिल में बना रहे।

दुनिया कितनी बड़ी है, यह हम जानते हैं क्योंकि सिकन्दर महान् की तरह हमारे दिल में दुनिया पर हुकूमत करने का रत्ती भर भी विचार

नहीं है—फिर भी चूँकि हम भारतवासी हैं, गुलाम भले ही हों, पर स्वाभिमानी भारतवासी तो हैं ही और अपने स्वाभिमान को अपने आप पर ही साबित करने के लिए शिवाजी, प्रताप, रणजीतसिंह, झाँसी की रानी आदि आज़ादीपसन्द लोगों के प्रमाण दे सकते हैं और चूँकि स्कूल में जुगराफ़िया पढ़ा था, इसलिए जानते हैं कि सिकन्दर बनकर किसी पुरु के सामने यह जानने के लिए न जाना होगा कि दुनिया कितनी बड़ी है और उस पर एक क़ौम या एक राजा हुकूमत कर सकता है या नहीं। फिर भी रुपये कमानेवाले कोर्स प्रकाशकों द्वारा छापे गये नक़्शों के आधार पर दुनिया की कल्पना को पीछे छोड़ हम यह आसानी से समझ लेते हैं कि हमारा देश भूखा और गुलाम होने पर भी प्रकृति को सजा सकता है। हम लखनऊ में रहते हैं, आप शायद न जानते हों कि लखनऊ सूबए अवध की राजधानी है और गवर्नर साहब यहीं निवास करते हैं, फिर भी हम उतने की कल्पना नहीं कर पाते, जितना गवर्नर साहब या अवध के राजे अपने बैरा को इनाम या बख़्शीशों में दे डालते हैं। हम आपको बता दें कि तमाम अवध, उधर बनारस, इधर हरद्वार और नैनीताल, उधर मैनपुरी, आगरा, मथुरा के अलावा सारा राजपूताना सूबए दिल्ली और आधा पञ्जाब (नीचे का हिस्सा) हमारा देखा-जाना पड़ा है। हिन्दुस्तान के हर शहर में हमारे औरत-मर्द दोस्त हैं। हमारे पास पैसा नहीं है और हम राजनीति नहीं समझते, क्वाँरे भी हैं, जवान होने पर भी दुबले-पतले हैं, पर आप यक़ीन मानें कि हमारा रोमांस बहुत कम युवतियों से लड़ा है। (कितनी? क्या और लड़ाने की इच्छा है?—स०) हम मशहूर बहुत हैं, यानी कि हमारी आठ किताबें छप चुकी हैं, सात अख़बारों का सम्पादन किया है, सरकारी प्रचार विभाग में भी काम किया है, पचास साप्ताहिक और मासिक पत्रों में कहानियाँ, लेख और कविताएँ लिखी हैं, चित्र और कार्टून बनाये हैं और ख़ुदा के

फ़ज़ल से दिल्ली और लखनऊ के रेडियो स्टेशनों ने अपनी ढेरों चीज़ें ब्राडकास्ट की हैं, पर क़िस्मत क्या है कि जिन लड़कियों ने हमसे शादी करनी चाही, उन्हें हमने रिजेक्ट कर दिया, हमने जिन्हें चाहा, उनसे कहने की हिम्मत नहीं पड़ी। क्वाँरे हैं, सो कभी कभी खेल-कूद कर जी बहला लेते हैं।

हम जैसा विद्वान् और समझदार आदमी, जिसे सारी दुनिया के पढ़े लिखे आदमी जानते हैं, भारतवासी होकर दिवाली के एक दिन पहले ख़्वाहमख़्वाह सो जाये तो उसे क्या सपना दिखाई देगा—यह आप नहीं सोच पायेंगे, जानेंगे भी तो यही कि हमारे दिमाग़ में शैक्सपियर, बायरन, मिल्टन, चेखव, डोस्टोवस्की, गोर्की, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पर्लबक, अलेक्ज़ेण्डर ड्यूमा, गाल्सवर्दी, अनातोले फ्रांस, आईवान कैन्कर, आर्थर शिनीलर, जेम्स पीटर, पैरेज, अलफोन्जो दादे, टाल्सटाय और मोपांसा का साहित्य, शरलाक होम्स या ब्लैक की घटिया जासूसी, प्रेमचन्द की ग्रामीण समस्या, जैनेन्द्र के विचार, महात्मा गांधी, चर्चिल, हिटलर, लेनिन, स्टालिन, रूज़वेल्ट आदि की राजनीति, तानसेन और विष्णु दिगम्बर की संगीत कला, रोरिक वैनेट या नन्दलाल की चित्रकला, चार्ली चैपलिन का अभिनय और चाणक्य की नीति चक्कर लगाती रही होगी—या फिर सोचेंगे कि युद्ध की वर्तमान घटनाएँ या भविष्य पर हमारा दिमाग़ सोच रहा होगा या बंगाल के भूखों के पास अनाज कैसे पहुँचे यह हम सोच रहे होंगे—पर हमें माफ़ कीजिये, हम यह कहने की इजाज़त चाहते हैं कि अगर आप यह सोच रहे हैं तो आपका दिमाग़ ख़राब है, आपको क्रुनैन, अमृतधारा या किसी और दवा का प्रयोग करना चाहिये। हम आपको अपने कल के सपने की बात बता देते हैं, पर शर्त यह है कि किसी से कह न दीजियेगा।

शुरुआत होती है, जैसे फ़िल्म दिखाया जा रहा हो, हम देखते क्या हैं कि पीरू पहलवान, जिनसे पण्डित अमृतलाल नागर ने हमारा परि-

चय कराया था, हमारे साथ घूमते हुए क़ैसरबाग़ सरकस पार कर रहे हैं—हम लोग चुपचाप आगे बढ़े जा रहे हैं, पीरू पहलवान बीड़ी के गहरे कश लेते हुए चल रहे हैं और छड़ी पर बल देकर कभी-कभी इस बुरी तरह से थिरक उठते हैं कि हमें दहशत होने लगती है कि ये गिर न जाएँ !

उन्होंने झटके के साथ बीड़ी फेंक दी, जबकि हम लोग मैरिस-म्युज़िक कालेज के पास पहुँचे और सामने से एक ख़ूबसूरत लड़की को जाते देखा—अब तो पीरू पहलवान की ज़बान कतरनी की तरह चल रही थी और हम ये कि उनकी अकल को, विद्वत्ता से भरी तक़रीर सुनकर मन-ही-मन दाद दे रहे थे। पीरू पहलवान ने पतङ्गबाज़ी, बटेर-बाज़ी, इत्रबाज़ी के इतिहास और नवाब वाजिदअली शाह साहब (परमात्मा उनकी रूह को शान्ति बख़्शे) की शानोशौक़त से लेकर अगस्त आन्दोलन तक का ज़िक्र, मय प्रमाणों और तिथियों के पेश करके झटके से कन्धा उठाया और दूसरी बीड़ी जलायी।

पीरू पहलवान निहायत दुबले-पतले हैं, पहलवान उनकी इज़्ज़त अफ़ज़ाई के लिये कहा जाता है—बापदादे कुछ पैसा छोड़ गये हैं और नवाब साहब जनाब मुहीउद्दीन के ख़ास मुसाहब होने के कारण घर गिरस्ती की फ़िक्र उन्हें नहीं है—अच्छा खाते हैं, डीवन के लट्ठे के चूड़ीदार पाजामे और ढाके की मलमल के कुरते, जरी के काम के जूते, ख़ास चौक के पल्ले की टोपियाँ और बरेली के सुरमे की शीशियों से उनके कमरे की अलमारियाँ भरी रहती हैं—कन्नौज के इत्र से, किताबें रखने की लखनऊ की रील और महमूदाबाद की पतङ्गों से उस कमरे की दीवारें सजी हुई हैं। ख़ैर इन बातों को छोड़िये—

तो पीरू पहलवान अपनी क़ाबलियत झाड़ने के लिये और उसका प्रभाव उस लड़की पर डालने के लिये जो कुछ कहे जा रहे थे जब हम उससे तङ्ग आ गये तो उनकी हाँ में हाँ मिलाना छोड़ दिया।

देखा कि लड़की गोमती का पुल पार कर रही है और हम लोग उसके बिलकुल पास चल रहे हैं, यहाँ तक कि उसकी बनारसी साड़ी के रेशों को छोड़कर भागनेवाली ख़ास पेरिस के बने सैण्ट की ख़ुशबू के बीच में हम लोग अपने आपको पा रहे थे।

रात हो रही थी पर यूनीवर्सिटी यूनियन भवन दीप-मालाओं से जगमगा रहा था और आगे बढ़े तो यूनीवर्सिटी बिल्डिङ्ग भी उसी तरह झिलमिल हो रही थी—चारों ओर बड़ी बहार नज़र आती थी। बहुत-से लोग इधर-उधर प्रसन्न वदन आ-जा रहे थे।

हम लोगों की उत्सुकता बढ़ी और हमारे कुछ कहने से पहले ही पीरू पहलवान ने एक दुबले-पतले हिन्दुस्तानी साहब से सवाल किया—'मैंने कहा आबादअर्ज़ है।'

आश्चर्य से पीरू की ओर देखकर युवक बोला—'कहिये।'

'क्या नाम है, गुस्ताख़ी माफ़ हो, ये रोशनी क्यों हो रही है?'

युवक ठट्ठा लगाकर हँसा, शान्त होने पर कहा—'सरकार से कांग्रेस का पैक्ट हो गया है.....।'

पीरू ने बीच में ही कहा—ये पैक्ट क्या जनाब!

हम ज़रा पीछे हट गये थे और पीरू को मन-ही-मन लानत भेज रहे थे। युवक फिर ज़ोर से हँसा, फिर कहा—'समझौता नवाब साहब! कांग्रेस और सरकार का समझौता हो गया है और सब कांग्रेसी छोड़ दिये गये हैं।'

'अमा, क्या गांधी महात्मा और पन्त वल्लभ भी छोड़ दिये गये हैं?'

'जी हाँ।' युवक ने हँसते हुए कहा।

'वो हमारे नवाब साहब हैं नहीं, मुहीउद्दीन साहब, वो क्या नाम है गांधी से जेल में मिले थे, पन्त वल्लभ तो हमारे नवाब साहब के दोस्त हैं—उन्होंने तो छुड़वाया है और पीरू हँस पड़े।'

इधर हम जो थे वो एक तरफ़ तो लीडरान की रिहाई पर खुश थे और दूसरी तरफ़ ख़ून के घूँट पिये जा रहे थे कि ये पीरू साहब क्या किये डाल रहे हैं।

उधर वह लड़का हँसी के मारे लोट-पोट हुआ जा रहा था। इतने में क्या देखते हैं कि पीरू साहब को बीसियों लड़कों ने घेर लिया है और बनाना शुरू कर दिया है, पर पीरू साहब कुछ समझते ही नहीं, यहाँ तक कि खुश हो होके जवाब दिये जा रहे हैं।

उन लड़कों में हमारी जान पहचान के कुछ लोग भी थे, तो हमने पीरू को उसी मुसीबत में छोड़कर आगे बढ़ना ही मुनासिब समझा।

कोई पाँच मिनट बीते होंगे, हम धीरे-धीरे चलकर यूनियन बिल्डिङ्ग के पास जा खड़े हुए कि अब पीरू साहब मुसीबत से बच कर आये। दस-बारह मिनट बीते, तब पीरू साहब लपकते झपकते ग़ुस्से से तिलमिलाते मुझे आवाज़ देते हुए, ज़ोर-ज़ोर से पुकारते हुए आये और कहा—'अमा, कहाँ लाकर फँसा दिया। इन लड़कों ने हद्द कर दी। कहाँ तो लीडरान की रिहाई की खुशी और कहाँ ये बदतमीज़ी!'

तसल्ली देने के ढंग पर हमने कहा—'अमा हुआ क्या पहलवान!'

हम लोग आगे बढ़ने को ही थे कि यूनियन बिल्डिङ्ग से वही लड़की निकली। पीरू साहब हमारा प्रश्न भूलकर मुस्कराये और उसके पीछे चल दिये।

धीरे से हमें समझाया—'ये पढ़ी-लिखी लड़कियाँ मैंने बहुत देखी हैं जनाब! हमें बहुत बड़ा नवाब समझ कर ये हमारा इन्तज़ार कर रही थी .....।'

हमने कहा—'मार खा जाओगे पीरू।' अमा, देखते जाओ, कहकर पीरू आगे बढ़े और उस लड़की को सुनाने के लिए कहा—

'हमसे मिलो नवेली!
आबाद हो वीराना।'

आप यक़ीन मानें, लड़की रुक गयी और पीरू साहब उसके पास पहुँच गए। मैं ज़रा दूर ही रहा। लड़की ने ग़ुस्से में भरकर कहा—'क्या चाहते हैं, आप ?'

घबराहट पर शोख़ी और ज़िन्दादिली का पानी चढ़ाकर पीरू ने कहा—'यानी आपकी तारीफ़ ?'

'आपको मुझसे क्या मतलब है ?'

हम ज़रा और पीछे हट गये—वहाँ पेड़ों का झुरमुट था। पेड़ों की आवाज़ सुनाई पड़ी।

'हमसे मिलो नवेली !
आबाद हो वीराना।'

हमने झाँककर देखा कि लड़की पैर से चप्पल उतार रही है और कह रही है—'देखने में तो भले मालूम होते हैं, पर निहायत नामाक़ूल हैं आप।'

चप्पल उतरकर हाथ में पहुँच गयी है और पीरू अदब के साथ खड़े हैं, कहा—'आप कुछ भी कह सकती हैं।'

'क़ातिल ने अदाओं से देख
कर दिया दीवाना।'

अब हमने देखा कि कई लड़के उस ओर चले आ रहे हैं और लड़की ने कहा—'बदमाश कहीं के।' साथ ही ऊँची एड़ी का सैंडिल, पल्ले की टोपी से ढंकी पीरू साहब की गञ्जी खोपड़ी पर तड़ाक् से पड़ी...।

तड़ाक् की आवाज़ सुनकर हमारी आँख खुल गयी। कोई दरवाज़ा खटखटा रहा था। घबराए हुए गये तो देखा, पोस्टमैन एक बैरङ्ग ख़त लिए खड़ा है।

परमात्मा पीरू जैसे ज़िन्दा दिल को सलामत रखे। यों तो वे कई बार ऐसी हरकतें करते पकड़े गये हैं और मार भी खाई, पर आपको

कसम है, हमारी ख़ैर चाहें तो किसी से यह बात न कहें। पीरू साहब सुन पायेंगे तो हमारी बोटियाँ तक नोच खायेंगे।

अफ़सोस तो यही है कि सपना सच न हुआ। पीरू की जगह चाहे मार हम पर पड़ जाती, पर देश के रहनुमा तो रिहा हो जाते और आज हम सच्ची दिवाली मनाते। ख़ैर, आशावादी होने के नाते उस दिन का इन्तज़ार भी करना ही है। सपने तो झूठे ही होते हैं, उनका क्या ग़म !

मेरी ज़िन्दगी

मैं सच बोलना सबसे बड़ा धर्म समझता हूँ। लोग झूठ भी बोलते हैं। झूठ बोलने से उनका फ़ायदा भी होता है, यह मैं जानता हूँ। लेकिन मेरे मन में यह बात बस गई है कि झूठ बोलना सबसे बड़ा पाप है। मैं कभी झूठ नहीं बोला, न बोलना ही चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि आज की दुनिया में झूठ बोले बिना काम नहीं चलता। मैंने महसूस भी किया है कि झूठ न बोलने के कारण मुझे बहुत नुक़सान भी उठाना पड़ा है, इसीलिए मैंने दो-एक बार झूठ बोलने की कोशिश भी की, लेकिन मुझे इस बात का अफ़सोस है कि झूठ बोलने में मुझे कभी भी कामयाबी हासिल नहीं हुई।

एक बात है, मुझे हमेशा इस बात का सन्तोष रहा है कि मैं हमेशा सच बोला हूँ। मेरे मन में सच बोलने से एक अजीब तरह की शान्ति रहती है। मैं यह जानता हूँ कि झूठ न बोलने के कारण मुझे दुःख ज़रूर हुआ है। जब मैं देखता हूँ कि दुनिया के दूसरे आदमी केवल झूठ बोलने के कारण सुखी हैं, मज़े का खाते-पहिनते हैं, ऐश करते हैं, तब उनसे मुझको रश्क होता है। लेकिन मुझे इस बात का नाज़ भी है कि ज़िन्दगी में मैंने कभी भी झूठ नहीं बोला। चाहे इसे आप मेरी कमज़ोरी ही कहें, लेकिन मैं समझता हूँ कि अच्छा खाना-कपड़ा या ऐशो-आराम मेरे मन की शान्ति से ज़्यादा नहीं है।

इस मामले में मैं अपने एक दोस्त की बात की बहुत क़द्र करता हूँ। वे बहुत पढ़े-लिखे और क़ाबिल आदमी हैं। वे अक्सर कहा करते हैं कि ज़िन्दगी एक क़ीमती चीज़ है, जो मज़े से खाना-पीना और ऐशो-इशरत से ही दिन काटना नहीं कही जा सकती। दरअसल ज़िन्दगी नाम है चलने का और चलना बेईमानी का न होना चाहिए। ईमानदारी और सचाई से चले जाओ, तो उस ज़िन्दगी में वह मज़ा है जो मज़ा खाने-पीने में नहीं है, ऐशो-आराम में नहीं है।

मैं अपने दोस्त की बात समझता हूँ, मानता भी हूँ और मुझे उनकी इस बात पर पूरा-पूरा यक़ीन है कि उनकी यह बात मुझे हमेशा सही रास्ता दिखाती रहेगी। मेरे दोस्त मज़े के आदमी हैं, ख़ूब मस्त हैं, दुबले-पतले हैं। जाड़े, गर्मी या बरसात, कभी भी मैंने उन्हें मौसम के मुआफ़िक़ खाते-पीते या कपड़े पहनते नहीं देखा। इस बारे में जब मैंने उनसे कहा था तो उन्होंने कह दिया था कि हमारे मुल्क में ऐसे भी हज़ारों आदमी हैं जिन्हें एक वक्त का खाना भी मुश्किल से मिलता है, हज़ारों आदमी, औरतें और बच्चे बे-घर-बार के हैं; उन्हें तन ढकने को भी एक कपड़ा नहीं है। इसीलिए वे भी केवल एक कुरता और धोती पहनकर जाड़ा, गर्मी और बरसात काट देते हैं।

आज आप लोग मुझे इस फटे-हाल में बे-घर-बार के देखते हैं, इसका मुझे कभी अफ़सोस नहीं हुआ। आप देखते हैं कि मैं हमेशा खुश रहने की कोशिश करता रहता हूँ—रात-दिन हँसता रहता हूँ। मैं यह मानने से इन्कार नहीं करता कि मुझे दुःख ज़रूर है, लेकिन मुझे अपनी बेबसी और ग़रीबी का दुख क़तई नहीं है। दरअसल यही दुख और तकलीफ़ें झेलना ही तो ज़िन्दगी का चलना है। और जब दुःख-तकलीफ़ें मिट जाती हैं तो चलना कहाँ रह जाता है? और जब चलना बन्द हुआ तो, बक़ौल हमारे दोस्त, ज़िन्दगी, ज़िन्दगी न रह कर बेकार की चीज़ रह जाती है।

आप लोग हमेशा मुझसे यह पूछते आये हैं कि मैं ऐसा क्यों हूँ—क्यों हो गया हूँ; तो आज मैं वह सब बता येदे रहा हूँ। और मेरा ख़्याल है कि आप लोगों को मेरी बातों पर यक़ीन आयेगा, क्योंकि आप जानते हैं कि मैं हमेशा सच बोलता रहा हूँ।

माता-पिता की मुझे क़तई याद नहीं है। मेरे एक बड़े भाई थे। उन्होंने मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया था; पढ़ाया-लिखाया था। वे मुझे बहुत चाहते थे। वे सरकारी नौकर थे। मैं गाँव के ही मकान में भाभी के साथ रहता था; वे शहर में नौकर थे। जब आते तो मुझे बहुत-सी चीज़ें और रुपये दे जाते थे। मेरी भाभी बहुत भली थीं। वे मुझे बहुत चाहती थीं। कोई माँ जितना अपने बेटे के लिए नहीं कर सकती, मेरी भाभी मेरे लिए करती थीं। लेकिन मुझे यह सुख बदा नहीं था; क्योंकि भाभी बीमार रहती थीं। और अंत में उसी बीमारी में घुल-घुलकर वे मर भी गईं। एक तो भाभी का न रहना, दूसरे गाँव की पढ़ाई ख़त्म हो जाने से मैं भाई के साथ शहर चला गया। गाँव से हम लोगों ने अपना बिलकुल नाता तोड़ दिया।

धीरे-धीरे मैं बहुत पढ़-लिख गया। भाई ने कोशिश की कि मैं सरकारी नौकर हो जाऊँ, लेकिन मैंने उनसे नौकरी करने के लिए इन्कार कर दिया। मुझे नौकरी करना पसन्द न था, लेकिन मैं अक्सर नदी के किनारे चला जाता और कुदरत का खेल देखता रहता था। मुझे नदी की लहरें और पेड़ों के पीछे से आने वाली चाँद की हलकी छाया बहुत भली लगती थी। नाव में बैठा-बैठा मैं घण्टों यही सब देखा करता—ऐसे, जैसे मुझे दुनिया से कोई नाता नहीं है। यह ज़रूर था कि भाई मेरी इन हरकतों से नाराज़ हुए; लेकिन उन्होंने वह नाराज़ी ज़ाहिर नहीं की।

मैं देखता था कि भाभी के न रहने से उनके जीवन में एक बहुत बड़ी तब्दीली हो गई थी। हमेशा चुपचाप बैठे रहते थे, कुछ करते-

धरते नहीं बनता था। मैंने उनसे ख़ुद भी कहा था और उनके दोस्तों से भी कहलाया था; लेकिन वे दूसरी शादी न करना चाहते थे। घर में किसी औरत और बच्चे के न होने से अजीब मनहूसियत-सी रहती थी। भाई की आँखों में हमेशा एक तरह का ग़ुस्सा-सा छाया रहता था। मुझे उनकी शक्ल से भी डर लगने लगा। वे मुझसे बोलते भी कम थे और अक्सर डाट भी देते थे।

मैं जवान था, आज-कल की दुनिया में लड़का बाप को मार भी सकता है, लेकिन मैं उनकी बहुत इज़्ज़त करता था, इसलिए कभी मैंने उन्हें जवाब तक नहीं दिया था। वे कभी-कभी मुझसे बहुत ख़ुश हो जाते थे और मुझे रुपये भी देते थे। लेकिन मैं उनके मन का दुःख समझता था; इसीलिए कभी-कभी मैं रोने लगता था।

जी-तोड़ कोशिश करने के बाद वे शादी करने के लिए राज़ी भी हो गये। मैंने कोशिश करके उनके लिए एक ख़ूबसूरत-सी पढ़ी-लिखी लड़की तलाश करवाई।

लेकिन जब मेरी नई भाभी घर आईं तब मैंने समझा कि वाक़ई में जैसा मैं सोच रहा था वैसा नहीं होगा। भैया ख़ुश हो सकते हैं लेकिन मुझे पहले जैसी भाभी नहीं मिल सकतीं।

वे भाभी मुझे लाड़-प्यार करती थीं; लेकिन मेरी नई भाभी मुझसे जाने किस जन्म का बैर निभा रही थीं। वे अक्सर भैया से मेरी शिकायत करती थीं। मैंने चाहा कि मैं उनके ख़िलाफ़ भैया से सब कुछ कह दूँ; लेकिन हिम्मत न पड़ी। पहले तो भैया सुनते रहे, समझते रहे; लेकिन फिर मुझे डाटना और गालियाँ देना शुरू कर दिया। जब वे मुझसे कुछ कहते तो भाभी उन्हें और भी भरती जातीं।

एक दिन भाभी ने न जाने उनसे क्या-क्या कहा कि उन्होंने मुझे बहुत डाटा। डाटा ही नहीं, दो-एक चाँटे भी लगा दिये। लेकिन न जाने क्यों मुझसे कहने सुनने के बाद उन्होंने भाभी को भी डाटा,

और जब वे जवाब देने लगीं तो भैया ने चूल्हे में से सुलगता हुआ चैला उठाया और उन्हें पीटना शुरू किया। भाभी रोने लगीं; मैं उन्हें बचाने चला तो भैया ने वही चैला मेरी पीठ पर भी पूरी ताक़त से मारा, और कहा कि मैं उनके बीच में न बोलूँ। ख़ैर साहब, मैं वहाँ से चला आया।

उस दिन मेरे मन में न जाने कैसे अजीब भाव उठे। मैंने सोचा कि भैया को यों ही बहुत दुःख रहता है, मेरे कारण यह दुःख और भी बढ़ गया है। इसलिए मैं उनके बीच से हमेशा के लिए हट जाऊँगा। मैंने अपने विचार क़ायम रक्खे और इरादा किया कि उसी रात को घर से चला जाऊँगा।

रात को चुपचाप कुछ किताबें, ज़रूरी कपड़े और भाई का एक फ़ोटो लेकर मैं घर से निकलकर यहाँ आ पहुँचा हूँ।

आज पूरे ग्यारह वर्ष मुझे भाई से अलग होकर कोसों दूर इस गाँव में पड़े हुए हो गये हैं।

मुझे भाई की याद आती है और मैं जानता हूँ कि वे मेरी ही तरह कितनी ही बार मेरी याद करके रोये होंगे; लेकिन मैं वहाँ कभी जाऊँगा नहीं।

हँसना और रोना तो ज़िन्दगी की राह के रोड़े ही हैं, इन्हें पार करके बढ़े जाना ही ज़िन्दगी है। और मैं चल रहा हूँ, मेरी ज़िन्दगी कट रही है; क्योंकि मैं अपने दिल में सच्चा हूँ, ईमानदार हूँ और मज़बूत हूँ।

जागते रहो

सरदी के दिनों की किटकिटाती हुई साँझ, जब आसमान पर छाये हुये कोहरे के नीचे बसे गाँव में अँधेरी-रात के आने का सन्देश देती हुई चली जाती और अमरूद के बाग़ों से आने वाली खुशबू, रजनीगन्धा की मादक महक में मिलकर, सर्द हवाओं के साथ चारों ओर फैलने लगती, तब चरागाह के उस पार रेलवे स्टेशन का चपरासी एक एक करके दस घन्टे बजा देता।

दस बजने के साथ ही गाँव का बूढ़ा चौकीदार कन्धे पर कम्बल डाल, हाथ में लाठी थाम, मुस्तैदी के साथ, अपने घर से निकल पड़ता।

बूढ़ों की बात जाने दीजिये, गाँव में जितने भी युवक और कम उम्र के लड़के लड़कियाँ हैं, वे सब अपने जीवन की समझदारी के शुरू दिनों से ही अपने गाँव के इस पहरेदार को पहचानते हैं। बूढ़े लोग उसे "भैया" कहकर पुकारते हैं और जवान व कम उम्र के बच्चे उसे "दादा" कहते हैं।

दादा की उम्र अब तो क़रीब पचास साल हो चुकी है, लेकिन शुरू जवानी से वे ही इस गाँव की रखवाली करते आये हैं। अब तो बूढ़े लोग भी भूल गये हैं कि इनसे पहले, उनके इस गाँव की रखवाली कौन करता था।

दादा चौकीदार के बारे में गाँव वाले अनेक प्रकार की बातें कहते

हैं। कुछ का कहना है कि उन्हें हनूमान जी सिद्ध हैं, क्योंकि बूढ़े होने पर भी उनमें जवानों से अधिक शक्ति है। कुछ कहते हैं कि वे कुछ कुछ सनकी-से हैं, क्योंकि गाँव की हिफ़ाज़त वे अपने लड़के की तरह करते हैं। कुछ भी हो, लोग उन्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं। दादा गाँववालों को अपना समझते हैं। गाँववालों और दादा के बीच में जो भाव और जो नाता है, उसके अर्थ यही हैं कि गाँव दादा का है और दादा गाँववालों के हैं।

दादा का जीवन साधना और तपस्या की तस्वीर है। लोग कहते हैं कि जब उनकी उम्र चौबीस वर्ष की थी, तभी उनकी पत्नी एक पुत्री को जन्म देकर चल बसी थीं। लड़की भी कुछ मास बाद मर गई थी, हालाँकि दादा ने उसकी सेवा जी-जान से की थी। मरनेवाले को कौन बचा सकता है, यही सोचकर दादा ने सन्तोष किया। पत्नी के मरने के बाद लोगों ने कहा कि लड़की की रक्षा के लिये उन्हें ब्याह कर लेना चाहिये, जब लड़की भी मर गई, तो लोगों ने समझाना शुरू किया कि भरी जवानी है, घर गृहस्थी सँभालने के लिये और बुढ़ापे में सेवा-सहायता करने के लिये उन्हें ब्याह कर लेना चाहिये। लेकिन दादा ने सब लोगों को सदा एक ही उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि जब सारा गाँव उनका है, वे गाँव के हैं, तो सेवा-सहायता करने के लिये ब्याह करने की क्या ज़रूरत है? रात को गाँव की रखवाली करना और दिन में सुस्ताना तो चौकीदार की दिनचर्या होती है। ऐसे में पत्नी की देखभाल, उसकी फ़रमाइशें पूरी करना, बाल बच्चे होंगे तो उनकी सेवा-सुश्रूषा करना और गृहस्थी के दूसरे अनेक झंझट भला कैसे निभ सकेंगे। इसी तरह की और भी अनेक बातें उन्होंने गाँव के बड़े-बूढ़ों और अपने दोस्तों से कहीं। उन्होंने ऐसे-ऐसे तर्क पेश किये कि गाँव वाले कुछ जवाब न दे सके और उनका नतीजा यह हुआ कि दादा ने सबके समझाने बुझाने के बावजूद भी ब्याह नहीं किया।

दादा को अपना जीवन जीने के लिये प्यारा नहीं है, उनका ख़याल है कि वे इसलिये जी रहे हैं कि गाँव की रक्षा करें। गाँव उन्हें अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा है। कई बार उन्होंने गाँववालों की रक्षा चोरों और डाकुओं के शक्तिशाली गिरोहों से बड़ी मुस्तैदी के साथ की है। दादा का निश्चय है कि वे जीवन रहते गाँव में कभी चोरी नहीं होने देंगे। उन्हें अपने ऊपर इतना विश्वास है कि वे दस-दस आदमियों का मुक़ाबला अकेले ही करने को तैयार हो जाते हैं।

तीन साल पहले की बात है। इसी तरह जाड़े की एक ठिठुरती रात को नदी पार से पाँच चोरों का एक गिरोह गाँव में आया था। उन चोरों के पास लाठियाँ, बल्लम और छुरियाँ भी थीं, लेकिन दादा ने अकेले ही उनका मुक़ाबला असीम साहस, उत्साह और सन्तोष के साथ किया था, और उन सबको मार भगाया था। जब गाँव के नौजवान उनकी आवाज़ सुनकर पहुँचे थे, तब तक पाँचों चोर भाग गये थे। उस दिन से गाँववालों को विश्वास हो गया था कि दादा लाठी चलाने में अपना सानी नहीं रखते। गठीले नौजवान उस दिन के बाद, समय मिलते ही दादा के पास लाठी चलाने की कला सीखने के लिये पहुँच जाते थे।

दादा के बाल सफ़ेद हो गये हैं और वे चिन्तित हैं कि भविष्य में उनकी जगह कौन गाँव के लिये अपना फ़र्ज़ अदा करेगा! पर उन्हें गाँव में ऐसा कोई आदमी नहीं दिखाई देता, जिसे कि निश्चिन्त होकर वे अपना काम सौंप सकें और भविष्य की चिन्ता से मुक्त हो जायें। हृदय में भविष्य की चिन्ताओं के होने पर भी वे अपने काम में ढील नहीं करते। कमज़ोर बुढ़ापे का भय उन्हें अपना फ़र्ज़ अदा करने में बाधा नहीं पहुँचा पाता।

दादा हैं, उनका गाँव है, उनका कम्बल है और उनकी पुरानी लाठी है। दादा बूढ़े हैं, गाँव भी बूढ़ा है, पर उसकी रक्षा में कमी की ज़रूरत नहीं है। गाँव की रक्षा करनेवाला तो चाहिये ही, चाहे वह बूढ़ा हो, चाहे जवान। पर वह हो ऐसा ही, जो मुस्तैदी से जान हथेली

पर लेकर सङ्कटों और विरोधी परिस्थितियों से मुक़ाबला करते हुये उसकी रक्षा सफलतापूर्वक कर सके। दादा का कम्बल और उनकी लाठी उन्हीं की तरह पुराने और बूढ़े हैं, लेकिन वे दादा का साथ छोड़ने के लिये तैयार नहीं। जिस तरह दादा गाँव की रक्षा में अपना तन और मन खपाये हुये हैं, उसी तरह उनका कम्बल और लाठी पुराने मज़बूत साथी की तरह उनके हमराह हैं।

[२]

'जागते रहो।' कहते हुये, किटकिटाती हुई रात में दादा घर से निकले और उन्होंने गाँववालों को पैग़ाम दिया कि वे हिम्मत और मुस्तैदी के साथ, चोर और लुटेरों से गाँव की रक्षा करने के लिये मैदान में आ गये हैं। अजीब बात यह थी कि जब तक दादा के आगमन की सूचना गाँववालों को नहीं मिलती, तब तक तो वे जागते रहते थे, लेकिन जब दादा 'जागते रहो' का ऐलान करते हुये गाँव की गलियों में चक्कर लगाने लगते, तब गाँववाले बजाय जागने के सोने की चेष्टा करने लगते थे।

हर साल जाड़ों में नदी के पारवाले गाँव में चोर लुटेरों के गिरोह आकर लूटमार किया करते थे, इसीलिये इस गाँव के लोग भयभीत रहते थे, कि कहीं वे लोग उनके गाँव में भी न आ पहुँचें। लेकिन जब उन्हें ख़याल आता था दादा का, तब वे सोचते कि दादा के रहते गाँव पर कोई सङ्कट नहीं आ सकता—गाँव सुरक्षित है।

रजनीगन्धा के फूलों के साथ सर्द हवा के झोंके रेलवे स्टेशन पर बजने वाले बारह के घण्टे की गम्भीर ध्वनि को गाँव में ले आये।

समय का ऐलान समाप्त होते ही दादा ने पुकार लगाई—"जागते रहो।" और ज़मीन पर लाठी पटक कर आवाज़ करते हुए वे आगे बढ़े।

बिरजू और हीरा अभी तक चौपाल में बैठे हुए आग ताप रहे थे। दोनों को तीन बजे की गाड़ी से शहर जाना था, एक मुक़द्दमे में गवाही

देने के लिए। शायद समय पर जाग न सकें, सो दोनों उसी मुक़द्दमे के बारे में बातें करते हुए, बैठे-बैठे आग ताप रहे थे, जबकि उन्होंने दादा की आवाज़ सुनी—'जागते रहो।'

बिरजू ने कहा—'लो भैया, दादा आ गये।'

हीरा ने कहा—'चलो अच्छा है, थोड़ी देर उन्हीं से बातें करके जी बहलेगा। चोरों के बारे में जितनी बातें हमारे दादा जानते हैं; उतनी शायद ही कोई जानता हो।'

बिरजू ने कहा—'चोरों की बात छोड़ो, हम तो अपनी और अपने गाँव की बात जानते हैं कि दादा जो इस गाँव में न होते तो रोज़ दो-चार चोरियाँ होतीं। देखते नहीं हो, नदी पार वाले गाँव में रोज़ चोरियाँ होती हैं, पर इधर, दादा के कारण; किसी चोर की हिम्मत नहीं होती कि आ जाये।' और बिरजू ऐसे मुस्कराया जैसे दादा पर उसे बहुत अभिमान है।

हीरा कुछ कहने को ही था कि देखा, सामने कम्बल ओढ़े, हाथ में तेल की मालिश से चमचमाती हुई लाठी लिये दादा खड़े हैं।

दादा ने कहा—'कहो भैया' इतनी रात तक काहे को जाग रहे हो। क्या मेरे साथ चौकीदारी करने की इच्छा है, या मेरी ही चौकीदारी करने का इरादा है।' और वे हँस पड़े, फिर कहा—'पर भैया, तुम लोग ही क्या, सारा गाँव जानता है कि मुझमें कोई भी बुरी आदत नहीं है। मैं तो तुम लोगों की और तुम्हारे गाँव की रक्षा करना ही अपना कर्तव्य समझता हूँ, सो कर रहा हूँ। और भगवान से प्रार्थना करता रहता हूँ कि कभी मुझसे ऐसा कोई काम न हो जाये, जो गाँववालों की भलाई में बाधक हो। बस, मेरा जन्म सुफल हो गया।'

बिरजू ने कहा—'बैठो दादा, आओ, थोड़ा ताप ही लो। देखो, सरदी कैसी पड़ रही है, जैसे हिमालिया पहाड़ के बरफ की सारी हवा यहीं आने को हो।"

दादा मुस्कराये, कहा—"कोई नई बात तो है नहीं भैया। जनम भर इसी सरदी में घूमा हूँ, यह कम्बल मेरा साथ देता रहा है। नहीं भैया, सरदी से डर कर आग का सहारा लेने की इच्छा तो इस समय नहीं है।"

हीरा ने कहा—"बैठो भी दादा। थोड़ी देर सुस्ता के चले जाना, अभी बजा ही क्या है? कोई सवा बारह बजे होंगे। तीन बजे की गाड़ी से हमें मंगल के मुक़द्दमे में गवाही देने के लिए शहर जाना है। आओ न, तब तक दो बातें ही हो जायँ। लाला रामआसरे के घर जो डाका पड़ा था, उसका क़िस्सा सुनने में बड़ा अच्छा लगता है, वही सुनाओ न।"

दादा हँस पड़े, बोले, "भैया, बैठने सुस्ताने से काम नहीं चलता। जीवन का नाम और अर्थ मुस्तैदी और लगन है, इस तरह ठल्लेबाज़ी से कैसे काम चल सकता है।"

और दादा चुपचाप मुस्कराते हुए आगे बढ़ गये। हीरा और बिरजू दोनों ही चुपचाप उनकी ओर देखते रहे। कुछ देर बाद जब दूर से दादा ने "जागते रहो" की पुकार लगाई, तब उन दोनों का ध्यान भंग हुआ और वे फिर बातें करने लगे।

[३]

चारों ओर घोर सन्नाटा छाया हुआ था। गली के मोड़ पर जहाँ रामजस हलवाई का घर है, ज्योंही दादा ज़मीन पर लाठी पटक कर "जागते रहो" की पुकार देने को हुए कि उन्होंने रामजस के मकान के पिछवाड़े भैंस बाँधने के लिए बनाई गई जगह में आदमी की छाया देखी। लाठी पटकते-पटकते हाथ रुक गया और "जागते रहो" की पुकार वे न दे सके। धीरे से आगे बढ़े तो देखा कि लाठी लिए कोई आदमी दीवार के सहारे खड़ा है। दादा का खून खौल उठा। इतनी भयानक रात में गाँव का कोई आदमी हो नहीं सकता और अगर चोर है तो, ये जानते हुए भी कि इस गाँव की रक्षा का भार उनके ऊपर है, उसकी हिम्मत यहाँ तक आने की कैसे हुई?

दादा ने कड़क कर कहा—"कौन है।"

उधर से कोई उत्तर न आया और वह छाया खिसक कर एक ओर अँधेरे में हो गयी। दादा ने फिर आगे बढ़कर पूछा—"कौन है।"

जब फिर उत्तर न आया, तो दादा ने कहा—"कौन है जो चुपचाप छिपा खड़ा है। सामने आ जाओ, नहीं तो, वो लाठी जमाऊँगा कि खोपड़ी खिल जायेगी।"

मालूम हुआ कि किसी के पैरों की आहट हुई, लेकिन न तो कोई सामने आया और न दादा की बात का जवाब ही मिला।

दादा आगे बढ़कर दीवार के पास पहुँचे। एक ओर भैंस बँधी थी, सँभलकर उसके पीछे जा खड़े हुए और गरजकर कहा—"मैंने तुम्हें देख लिया है! सामने नहीं आओगे तो लाठी जमा दूँगा।"

इस बार एक आदमी तेज़ी से बाहर निकला। लाठी उसके हाथ में भी थी। दादा ने उसका रास्ता रोक लिया। तभी उस आदमी ने ज़ोर से लाठी चलाई, जिसे दादा ने अपनी लाठी पर रोका।

कोई ५ मिनट तक तड़ातड़ लाठियाँ चलती रहीं, पर दादा ने किसी को भी नहीं पुकारा। उस आदमी की लाठी का एक वार दादा के कन्धे पर ज्यों ही लगा, त्यों ही दादा की लाठी उसके हाथ पर पड़ी और वह अपनी लाठी छोड़कर भागने को हुआ कि दादा ने उसके पैरों के बीच अपना पैर अड़ा दिया और वह गिर पड़ा। अब दादा उसके पास पहुँचे और उसे पकड़ लिया, कहा—"क्यों भैया, जवान होकर चोरी करते लाज नहीं आती? और सो भी मेरे गाँव में चोरी? मैं अभी तुम्हें पुलिस में दे दूँ तो जन्म भर जेल की चक्की पीसो। जवान हो, पर यह नहीं बनता कि भले आदमी की तरह मेहनत मज़दूरी करके रहो। कैसे सीख ली चोरी?"

वह आदमी उठकर बैठ गया और दादा की बातें ध्यान से सुनते हुए उनकी ओर अवाक् होकर देखता रहा।

दादा ने कहा—"राम-राम, कैसे हट्टे-कट्टे जवान हो और करते हो चोरी। तुम्हारा तन तो ऐसा है कि दूसरों की सेवा करो। मैं पूछता हूँ कि क्यों चोरी करते हो?"

धीरे से उस आदमी ने कहा—"नदी पार के गाँव में रहता हूँ बाबा, काम धन्धा मिलता नहीं था सो.....।"

दादा ने कहा—"सो चोरी करने लगे, क्यों?"

उसने कहा—"नहीं बाबा, पर करता क्या? भूखे तो नहीं रहा जाता।"

"ये क्यों नहीं कहते कि काम करने में देही लचती है।" दादा ने कहा।

"नहीं बाबा, काम तो मिलता ही नहीं है।" वह बोला।

"काम मिले तो करोगे?" दादा ने पूछा।

उत्साह से उसने कहा—"क्यों नहीं करेंगे!"

* * *

स्टेशन जाते हुये हरी और बिरजू ने एक हट्टे-कट्टे नौजवान के साथ दादा को आते हुए देखा। बिरजू ने पूछा, "ये कौन है दादा?"

"चोर!"

"चोर है? क्या चुराया है इसने? किसके यहाँ चोरी की है दादा?" हीरा ने कहा—

"मेरे यहाँ।" दादा बोले।

बिरजू बोला—"तुम्हारे यहाँ दादा? ख़ैर पकड़ तो लिया तुमने। अब इसे जेल भिजवाये बिना न छोड़ना।"

"जेल क्या भिजवाऊँगा भैया। इसने तो मेरा सब कुछ लूट लिया।" दादा ने कहा—

"क्या दादा?" आश्चर्य से बिरजू बोला—

"हाँ, भैया, इसने मेरा काम छीन लिया है। अब यही मेरी जगह गाँव की चौकीदारी करेगा।" दादा ने सन्तोष के साथ कहा।

उस जवान के कन्धे पर हाथ रखकर जो दादा की बात सुनकर आश्चर्य-चकित खड़ा था, बिरजू ने दादा से कहा—"तो फिर ये क्यों नहीं कहते कि बुढ़ापे के कारण तुम छुट्टी ले रहे हो, और इन्हें बुलवा लिया है काम करने को।"

दादा कुछ न बोले, मुस्करा दिए।

* * *

और दूसरी रात गाँववालों ने दादा की पुकार न सुनी। सुनाई पड़ा कि वही नया युवक 'जागते रहो' का ऐलान कर रहा है।

एक शाम

तीनों साथी, गए दिन के मनमुटाव को भूलकर, आज फिर पुरानी जगह पर जमा हुए।

मिरजा के बैठते ही जगन ने कहा—कल गोली चली थी।

गंभीर होकर मिरजा ने कहा—मुझे मालूम है।

"मैं उस बखत मिरजा जी, पारिक में था। बड़ी भीड़ें जमा थीं पारिक के चारों तरफ और पारिक के अन्दर साब, हजारों-लाखों लाल पगड़ीवाले बन्दूकें लिए बैठे थे। इत्ते में हुआ क्या कि अस्पताल के पिछवाड़े की तरफ हंगामा मच गया। इनकिलाब जिन्दाबाद हो, और साब, गान्धी महात्मा की जय हो, और जवाहरलाल और सुभासचन्दर बाबू की जैजैकार मच गई। मैं भी, मिरजा जी, जोस में आ गया। मुँह से निकल गई कि भई भारत माता की भी जै हो। अब ये हाल था कि मेरी आवाज सुनते ही पारिक के चारों तरफ जमा हुई भीड़ बस, जैजैकार मचाने लगी। आसमान तक आवाजें पहुँच रही थीं और सारा सहर गूँज रहा था। पुलिसवाले पहले तो सकते की हालत में आ गए लेकिन जैसे ही उनके अफसर ने जमादार साहब से कुछ कहा कि बन्दूकें तान के वे सब सिपाही तैयार हो गए। अब जो देखते हैं तो अस्पताल के पिछवाड़े से आनेवाली भीड़, साब, पारिक के पास पहुँच गई थी। आगे-आगे दो तीन औरतें थीं और

उनके पीछे कोई बीस-पचीस काँग्रेसियों का जत्था था। उस वक्त ऐसा लग रहा था कि वे औरतें सचमुच भारत-माता का रूप धरके आई हैं। सफेद धोती थी सब, और हाथ में तिरंगा झंडा लिए थीं। पुलिस ने पारिक का झंडा उतार लिया था सो सब ये ही चाहें थे कि झण्डा तो लगना ही चाहिए। अब सत्यागिरे वाले रोज झंडा लेके आयें और रोज पुलिसवाले उन्हें पकड़ के लौरी में बिठा के जेलखाने ले जायें। मगर उस दिन सब, बड़ा जोस था जनता में भी।

मिरजाजी बहुत गम्भीर बैठे थे—आज उन्हें चरस की चिलम याद ही नहीं आ रही थी। रहमत भी चुपचाप टूटी खाट पर हत्था देके, ध्यानपूर्वक जगन की बात सुन रहा था।

'जब वे भारत माताएँ और उनके साथी पास आ गए तो भीड़ ने हटकर उन्हें रास्ता दिया कि वे पारिक में चले जाएँ। अब ये हाल था कि जो लाखों आदमी पारिक के चारो तरफ जमा थे वे सब इसी तरफ को इकट्ठे हो गए। मैं भी बस 'जै-जैकार' मचा रहा था और भीड़ भी मेरा संग दे रही थी। जगह का हाल ये था कि मुश्किल से जमीन पर एक पैर टिक रहा था—जिधर नजर उठती थी आदमी की खोपड़ियाँ ही दिखाई पड़ रही थीं। आप से क्या कहूँ, साँस लेने की जगह नहीं थी।

'अब ये लोग तो झंडा लेकर सान्तिपूर्वक पारिक में घुसे हैं और उधर पुलिसवाले भेड़िये की तरह इनके ऊपर टूट पड़े। हाहाकार मच गया! पलक झपते बड़े बड़े कारनामे हो गए साब! ये पुलिसवाले बड़ी जालिम कौम है मिरजा जी। उस वक्त का सीन आँखों के सामने घूम रहा है और रोंगटे खड़े हो रहे हैं। पुलिसवालों ने झंडे-फंडे तो साब, छीन-छान के एक तरफ किए और उन सबको बेरहमी से पकड़ के ले चले। अब अपनी माँ बहनों और भाइयों की ये दुर्गत जनता से सही न गई। फिर जै जै कार मची और भीड़ पारिक के अन्दर घुसना ही चाहती थी कि पीछे से हाय-तोबा मच गई। देखते क्या हैं कि घुड़सवार सिपाही

भीड़ पर चले आ रहे हैं और पारिक वाले सिपाही इधर से लाठी चार्ज कर रहे हैं। जनता बिचारी बीच में पड़ गई।

'फिर तो मिरजाजी, वही कहावत हो गई कि मरता क्या न करता—पारिक के चारों तरफ की सड़क बनने के लिए जो कंकरीट जमा थी, बस, सबका ध्यान उसी की तरफ लग गया और साब, कंकड़-पत्थर फिंकने लगे। पहले तो पुलिस वाले भी घबड़ाए साब लेकिन कहाँ कंकड़ और कहाँ घुड़सवार बन्दूकवाले—अफसर साला बीच पारिक में बैठा सिगरेट पी रहा था। उसने जब देखा कि हमले का जवाब मिल रहा है, तब तो सिगरेट एक तरफ को फैंकी और झल्लाया हुआ आया और आव देखा न ताव साब फैर का हुक्म दे डाला उसने!

हवा में तड़ातड़ गोलियाँ छूटीं तो घोड़े बिचक गये और घुड़सवार सिपाहियों के बीच में जनता को भागने की जगह मिल गई। निहत्थी जनता बिचारी जान लेकर पुलिस के घेरे में से भागी है तो साब, जहाँ जिसे जगह मिली वहीं पे छिप गए।

'अब तो पुलिस को जो कोई मिला उसी को पकड़ के ले गये चौकी पे—सुनते हैं उन लोगों बिचारों पे वो-चो मार पड़ी है कि क्या कहें साब!' जल्वे दिखा दिए।

अब मिरजाजी बोले—एक शेर हो गया जगन कहते हैं कि—

'इब्तिदाए इश्क़ है रोता है क्या—
आगे आगे देख तो होता है क्या!'

यानी अभी तो शुरुआत है। आगे अल्लाह जाने क्या होने को है—'कहते हैं कि 'अरे, अभी से हाय क्यों निकली ज़ुल्म की इन्तेहा देखो।' तो भाई, मेरे, अभी तो जाने क्या-क्या होगा। ये फिरंगी हमें आदमी नहीं समझते।'

जगन ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—'आज को कहीं पन्तजी की कांग्रेस होती तो याद करते पुलिसवाले भी।'

मिरजाजी बोले—'पन्तजी की मिनिस्ट्री होती तो ये नौबत ही क्यों आती—कल के बादशाह लोग आज के दिन जेलों में चक्की पीस रहे हैं। या अल्लाह, ये क्या कहर नाजिर कर रहा है!'

रहमत ने कहा—'एक वो ज़माना था कि जब इसी अवध के अन्दर नवाब वाजिदअली शाह साहब की हुकूमत थी और शेर-बकरी एक घाट पानी पीते थे।'

मिरजाजी ने भी एक लम्बी साँस छोड़कर कहा—'ऐसे गऊ बादशाह पर भी इन फिरंगियों ने क्या कुछ कम ज़ुल्म किए थे। आह, मेरे मालिक, ये दिन दिखाने के लिए ही क्या तूने मुझे ये ज़िन्दगी बख्शी है। हाय-हाय, ये ज़माना आ गया कि रोने और हँसने के लिए भी दूसरों की इजत लेनी होगी और वो भी अपने ही घर में। या खुदा, रहम कर रहम कर!'

और मिरजाजी अधीर होकर रोने लगे। रहमत और जगन ने उन्हें बड़ा धीरज बँधाया तब उन्होंने आँसू पोंछकर कहा—'अब इस दुनियाँ में जिंदा नहीं रहा जाता। ऐसे ज़ालिम की हुकूमत में रहने से तो दोजख में जाना ही खुशकिस्मती होती।'

'मिरजाजी, अभी आप ही ने तो ये फ़रमाया था कि धीरज रखकर देखो कि जालिम के सितम की इन्तेहाजिम क्या होता है।' कहकर रहमत ने मिरजाजी को दिलासा दिया कि रोना बेकार है।

भारी जूतों की आवाज सुनाई पड़ी। जगन बोला सिपाही आ रहा है।

मिरजा ने कहा आने दो साले को, यहीं ढेर कर दूँगा साले को।

रहमत ने कहा, झगड़ा फसाद मत कर बैठना मिरजाजी इन लोगों को बड़े इख्तियार हासिल हैं, जानें क्या कर डालें।

इतने में सिपाही सामने आ गया। जगन ने कहा—'जै राम जी की, जमादार साहब।'

सिपाही—'तुम लोग साले, आज भी यहाँ बैठे हो। चरस की ठेकी तो बन्द है आज।'

रहमत—'क्या करें जमादार साहब!' घर धूरा तो है नहीं, कुछ देर यहीं बैठ जाते हैं। एक पुड़िया दुलारे से माँग लाये थे। दम लगाओ तो चिलम तैयार करूँ।

'ये सबक किसी और को देना—साले बम बनाने को जमा होते हो!'

जगन बोला—'राम-राम तोप बम की तो बातें भी ख्याल में नहीं आतीं और आप कहते हैं .....।'

'कुछ नामा-वामा है?'

'आज तो कोरे हैं जमादार साहब! कल कहें तो ..।'

'कल की ऐसी-तैसी जो हो सो निकालो नहीं तो बन्द कर दूँगा चौकी में सालों को।'

जो कुछ दो तीन रुपये तीनों के पास थे, देने पड़े। सिपाही चला गया तो रहमत बोला—गदर क्या मचा, इन पुलिसवालों ने तो लूट पाट शुरू कर दी। दो तीन दिन हुए—अपने मुहल्ले के रस्तोगी साहब जो हैं, उनका लड़का अपने किसी दोस्त के साथ घूमता हुआ जा रहा था कि सिपाही ने पकड़ लिया कि तुम साले, टेलीफ़ौन के तार काट रहे हो। अब तुम्हीं बताओ हद हो गई कि नहीं—सुनते हैं कि पुलिसवालों ने रुपया ले लिवा के मामला दबा दिया। अब समझ लो कि रुपया कमाने का ये तरीका निकाला है इन हरामखोरों ने।'

मिरजा माथे पर हाथ रखकर खोए-खोए बैठे थे।

रहमत की बात पर जगन बोला—'तुम्हारा कहना सही है, लेकिन सभी ऐसे नहीं होते। लड़कियों के कालेज में हड़ताल चल रही थी साब। ये लड़कियाँ भी गजब का दिमाग रखती हैं। उन्होंने सोचा झंडा नहीं लगाने दोगे तो साब, साड़ियाँ ही तिरङ्गी रङ्ग डालीं और कालेज में

हड़ताल मचा दी। बड़ी मास्टरनी साब, बड़ी घबड़ाई। उसने थाने में खबर कर दी अँगरेज अफसर था—खबर पाते ही गारद लेकर कालेज में पहुँच गया। एक लड़की से उसने सबब पूछा, बात बढ़ गई। यहाँ तक कि हातापाई हो गई। उस लड़की का जम्फर फट गया बस अब तो वो दुर्गा का रूप धारन कर गई। उसने भी साब, वो रहपटा जमाया कि अफसर भी साला, याद करता होगा। अरे साब, इज्जत का सवाल था उस बखत! अब जो ये देखा तो सभी लड़कियाँ मौत से खेलने को तैयार हो गईं। उन्होंने सोचा 'काल करे सो आज कर, और आज करे सो अब!' लेकिन इत्तेई में क्या हुआ कि उस फिरंगी ने पिस्तौल तान ली। उसी की बगल में डिप्टी साब खड़े थे। ठाकुर हैं वो भी। उनकी लड़की भी वहीं पढ़ती है। जब उन्होंने देखा कि ये फिरंगी साला तो मेरी लड़कियों की जान पर तुल गया है, तब तो उनका राजपूती खून खौल उठा। उन्होंने आव देखा न ताव झट से अपनी पिस्तौल निकालकर उस अंग्रेज पर तान दी। जब ये खिलाफी देखी तो अंग्रेज साला घबड़ाया और बात बनाने लगा। खैर मामला रफा-दफा हुआ। लेकिन वो अंग्रेज़ तो ठाकुर साहब को दुस्मन समझने ही लगा—कौन जाने अब वो क्या करे। लेकिन उस बखत तो उन्होंने साबित कर ही दिया कि हाँ हम भी देश की आन नहीं जाने देंगे। तो भइया, सब एक से नहीं होते।'

रहमत ने कहा—तुम ठीक कहते हो जगन, लेकिन ऐसी हस्तियाँ लाखों में एक दो होती हैं। अब मैं तुम्हें एक बात बताता हूँ—जैसे अभी तुमने फरमाया कि बुरों में भी अच्छे होते हैं, वैसे मेरे भाई, अच्छों में भी बुरे लोग हैं। अब ये कम्युनिस्ट जो हैं, यही लाल झंडे वाले जो कहते फिरते हैं कि लड़ाई-झगड़ा बन्द कर दो—इन्हीं को कम्युनिस्ट कहते हैं। ये लोग अपने आपको बड़ा अच्छा साबित करने की कोशिश करते हैं जगन, मगर अब धीरे-धीरे इनकी पोलें खुलेंगी। कल हकीम साहब बता रहे थे कि ये लोग रूस के बादशाह से तनखा पाते

हैं ! इनका काम ये है कि पबलिक में रूस के बादशाह की तारीफ करके उसको अपनी तरफ मिलाना और मौका देखते ही रूस की पल्टन को यहाँ बुलाकर राज सौंप देना। रूस बड़ी ताकत का देश है। उसकी पल्टन के सामने तो ये अँग्रेज चूँ भी न करें ? तो भाई, ये लोग पैसे के गुलाम हैं। मुल्क के साथ गद्दारी करते हैं इसलिये कि जेबें भरी रहें।

'वो हमारे पड़ौस में एक लौंडा साला रहता है, माफ करना जगन वो भी ठाकुर है। साले के गाल पिचके हैं, बाल बड़े-बड़े रखता है। खद्दर का कुरता पजामा पहनता है। कुछ शायरी भी कर लेता है और किसी हिंदी अख़बार का रिपोर्टर है। अब उसके कारनामे सुनो तो दंग रह जाओ। साला खद्दर पहनकर कांग्रेसी बनता है पर है कम्यूनिस्ट और असल में तो सी. आई. डी. है।

'हें।' जगन ने आश्चर्य से कहा।

'हाँ भाई, अपने रमजानी साहब ने ख़ुद हकीमजी से कहा था कि इस गदर के जमाने में उसने बीसियों आदमियों को गिरफ्तार कराया है और साले को तनखाह मिलती है बीस-पच्चीस रुपये महीने ही। शराब पीता है, लौंडियों को फाँसता है बेईमान।

मिरजा साहब बोले—अब जो अगर हिन्दुस्तान आजाद हो गया, इस गदर में, तो इन सब सालों को फाँसी लगेगी और मैं तो कहता हूँ कि अगर...!

जगन बोला—फिर कुछ गड़बड़ हो गया चलो जरा देखें।

तीनों छप्पर के नीचे से निकलकर सड़क की ओर चल दिये।

सड़क पर भगदड़ मच गई। शोर हो रहा था, जय-जयकार हो रही थी। लाठी चली—की आवाज आई।

जगन बोला—फिर कुछ गड़बड़ हो गया, चलो जरा देखें।

तीनों छप्पर के नीचे से निकलकर सड़क की ओर चल दिए।

चरस की चिलम

सबसे अधिक शोरोगुल इसी सड़क पर होता है। सब्ज़ी-मण्डी और बज़ाज़ा होने के अतिरिक्त यह सड़क स्टेशन तक जाती है। स्कूल के लड़के भी इधर से गुज़रते हैं—शहर के मध्य भाग का एक हिस्सा है यह सड़क। एक छोटी गली सब्ज़ी-मण्डी के अन्दर से और एक गली सड़क से फूटकर जिस जगह मिलती है, वह स्थान ताड़ीखाने का बाहरी आँगन है। सामने छप्पर पड़ा है और वहीं एक खाट पड़ी है, जिसके बाल अस्त-व्यस्त हालत में ज़मीन चूमते हैं। पास ही एक छोटा-सा गड्ढा है, जिसमें शायद चौबीस घण्टे आग दबी रहती है।

दिसम्बर की किटकिटानेवाली सरदी तीखी और सर्द हवा की चिन्ता इन लोगों को नहीं है। जगन ताड़ी की दो बोतलें पी चुका था और मिर्ज़ाजी खाट पर बैठे थे। रमज़ान आग कुरेदकर चिलम तैयार करने में जुटा था।

मिर्ज़ा ने कहा—'क्या कहते हो जगन भैया! ताड़ी तो मैं कभी नहीं पी सकता। साली ताड़ी पर लानत भेजता हूँ।'

जगन बोला—'और मैं, मैं इस साली चरस पे थूकता हूँ। क्या समझे?'

मिर्ज़ा ने चमककर कहा—'तुम्हारे बाप नहीं थूक सकते चरस पे...!'

'और तुम्हारी माँ भी ताड़ी पे लानत नहीं भेज सकतीं—क्या समझे?'

'बाप का जिकर करो बेटा! मैं तो अपनी माँ से हूँ।'

'बाप तुम्हारे नाली सूँघते थे—समझे?'

'और तुम्हारे बाप डुबकियाँ लगाते थे।' कहकर मिर्ज़ा ज़ोर से हँसे।

जगन झूमकर खड़ा हो गया। रमज़ान चिलम ठीक कर रहा था—

बाप-माँ की बातें और जगन का उठना एक साथ उसके दिमाग़ में आया और वह बोला 'अमा, बैठो मेरे यार' और उसने हाथ पकड़कर जगन को बिठाल लिया।

मिर्ज़ा बोले—'तुम क्या बिठाते हो रमज़ान, वह तो ख़ुद खड़ा नहीं रह सकता।'

'मैं खड़ा नहीं रह सकता! अरे, तुम नशे में हो मिर्ज़ा।' फिर जगन ने रमज़ान से सटते हुए कहा—'मेरे भैया, मेरी बात का विश्वास करो, ये अपनी छतरमंज़िल है, तुम्हारे सर की क़सम, इसकी मीनारें मेरे बाप ने अपने हाथों से बनाई थीं!'

रमज़ान ने उसे दिलासा दिया—'हाँ भैया, मुझे मालूम है—मेरे सामने का ही वाक़या है...।'

जगन ने लपककर, मिर्ज़ा की ओर मुख़ातिब होकर कहा—'सुनो, सुनो मिर्ज़ा! और तुम कहते हो मैं खड़ा नहीं रह सकता। बूढ़े हो गये पर मज़ाक करने का सलीका न आया।' और वह विजय की हँसी हँसा।

रमज़ान ने ऊँघते हुए मिर्ज़ा की ओर चिलम बढ़ाकर कहा—'लो जी मिर्ज़ा! ये चिलम ज़रा गहरी है। चरस साली ऐसी भुनी है इस बार कि एक ही दम में तबीयत ख़ुश हो जायगी।

मिर्ज़ा ने अँधेरे में हाथ घुमाया, कहा—साले चरका देते हैं—अबे, तुम्हारे बाप ने भी किसी को चरस की चिलम दी थी बेटा रमज़ानी, कि तुम्हीं साले लाट के बच्चे बन के, आ गये। चरका देते हैं साले। और वे फिर से सर लटकाकर बैठ गये।

रमज़ानी और जगन की नज़र तैयार चिलम पर ही लगी थी। जब मिर्ज़ा चिलम न ले सके तो जगन बोला—'लाओ मैं ही साली को एक दम में राख किये देता हूँ।'

मिर्ज़ा फिर बोल पड़े—'नामर्द साला, अबे, सारी दुनिया राख हुई जा रही है और तू हिम्मत आज़मा रहा है चिलम पर। मैं कहता हूँ

जगन, तेरे वालिद साहब मरहूम आ जायँ, तब भी एक खींच में चिलम नहीं दहका सकते'—

'मेरे बाप के ज़माने में, इस साले लखनऊ के अन्दर ताड़ी की नदियाँ बहती थीं। तुम एक साली चिलम का रोना रो रहे हो।' जगन ने रमज़ान के घोंटू पर थपकी देकर कहा—'भैया रमज़ान, इस गोमती में पहले पानी नहीं था, इसे मेरे बाप ताड़ी के मुचुक से लाये थे और तब नवाब वाजिदअली शाह साहब ने उन्हें नख़ास का इलाक़ा बख़्श दिया था।'

'तो भैया ये नख़ास, अब तुम्हारा नहीं है ?' रमज़ान ने हमदर्दी ज़ाहिर करनी चाही।

'मिर्ज़ा ! समझाओ इस बुद्धू को ! अबे, हमारा होता तो आज यहाँ बैठे होते। इस वक़्त तो बारादरी में जश्न मना रहे होते ! क्यों मिर्ज़ा, जगन बोला !'

'ठीक कहते हो भैया ! हाय, हाय क्या ज़माने थे वे भी ?' मिर्ज़ा ने माथा ठोका—'इस क़िस्मत में आज ये दिन देखना भी बदा था।' मिर्ज़ा रोने लगे।

'अब रोने से क्या होता है, मिर्ज़ा ! क़िस्मत ही फूटी है। नहीं तो, हम-तुम क्या थे और क्या हो गये। उसकी लीला बड़ी अजब है भैया।' जगन ने मिर्ज़ा के पास खिसकते हुए कहा।

दोनों गले मिल-मिल के रोने लगे। रमज़ान ने आँख बचाकर दो-तीन कश लगाये और चिलम मिर्ज़ा की ओर बढ़ाकर कहा —'अमा मिर्ज़ा ! अब तो रोने में भी मज़ा नहीं है—न वो सुख रहे, न वो दुख ! लो दम लगा लो, तुम्हारे हुज़ूर में ये मासूम चिलम हाथ बाँधे खड़ी है।'

जगन और मिर्ज़ा अलग हुए। मिर्ज़ा ने कहा—'तुम पियो जगन !'

'नहीं, तुम पियो मिर्ज़ा !'

'नहीं जगन तुम पियो !'

रमज़ान ने चिलम ले ली कहा—'हुज़ूर मिर्ज़ा साहब ! पहले आप

दोनों इस मामले में फ़ैसला कर लें, तब तक, इस साली चिलम की हिफ़ाज़त मैं करता हूँ।'

'जाओ, तुम्हीं पी डालो, हमने तुम्हें बख़्शीश में दे दी चिलम, क्यों जगन भैया!'

'हाँ मिर्ज़ा! अब चिलम-फ़िलम में क्या रक्खा है। अपने ज़माने में चिलमें होती थीं सोने-चाँदी की और भाई मेरे हुक्के.....' अहा, क्या फ़रशी हुक्के थे, उस ज़माने में। अब तो बस, याद बाक़ी रह गई है।'

रमज़ान चिलम में कश पे कश लगाये जा रहा था।

मिर्ज़ा कहने लगे—'जगन भैया, इस साले रमज़ान को देखो! दम लगाना भी नहीं जानता?'

रमज़ान ने ढेर-सा धुआँ छोड़ दिया। चिलम के ऊपर बालिश्त भर ऊँची लौ अब भी उठ रही थी। कहा—'क्या कहते हो मिर्ज़ा! छोटा मुँह और बड़ी बात! तुम्हारी इस नादानी और ओछेपन पे अल्ला का क़हर नाज़िर हो।'

'अबे, तू बड़ा चरसिया बनता है तो सौ-सौ रुपये बद के जमा तोले भर की चिलम!'

जगन बोला—'अरे रमज़ान! अभी तो हज़ार बरस तक मिर्ज़ा की शागिर्दी करो बेटा!'

'कह गये! कह गये जगन! अहा, क्या बात कही है। जगन की तबीयत फड़क उठी। देखा बेटा, जगन ने क्या कहा।' मिर्ज़ा बोले।

'ये साला खुद अभी लौंडा है। मैं कहता हूँ जिस साले में दम हो मेरे हाथ से चिलम ले ले और उठा दे हाथ भर ऊँची लौ।'

'कल के छोकरे हो रमज़ान! चिलम-फिलम साली राख होके रह जायगी एक कश में, सो याद रखना।'

'अरे बहुत देखे हैं ऐसे माहिर! एक चिलम पियोगे तो औंधे हो जाओगे।'

'औंधा हो जायगा तेरा बाप!'

'वह तो मर चुका मिर्ज़ा !' रमज़ान ने हँसते हुए कहा।

जगन ने रमज़ान के घोंटू पर थपकी देकर आहिस्ता से कहा—'अमा, किसके मुँह लगते हो रमज़ान ! मिर्जा तो नशे में है।'

'नशा वशा साला हिरन हो जायगा समझे ! ऐसे नसेबाज बहुत देखे हैं। साले मुझसे बात करते हैं।'

'किसे गाली देता है वे ?'

'जगन से कहा है मैंने, तुम हम लोगों के बीच में मत बोलो मिर्ज़ा !'

'नहीं, मिर्ज़ा, इसने तुम्हें गाली दी है।'

'नहीं मैंने जगन को गाली दी है।'

'तुम हरामख़ोर हो ! तुम हमें गाली नहीं दे सकते। बोलो मिर्ज़ा ! ये रमज़ान इतनी औक़ात रखता है कि हमें गाली दे सके ! और फिर तुम्हारे सामने।'

'मारो साले को !' मिर्ज़ा खाट से उठे।

रमज़ान ने जगन के पास खिसककर कहा—'मिर्ज़ा कहते हैं जगन को मारो।'

मिर्ज़ा ने कहा—'उड़ने दो कबूतर साले के सर पे।'

जगन ने कहा—'किस साले में दम है जो मारे !'

'मुझमें दम है, कौन रोक सकता है ?' मिर्ज़ा ने कहा।

'हम रोकेंगे। हम कहते हैं तुम जगन को नहीं मार सकते।' रमज़ान आगे बढ़ा।

'हम तुम्हें मारेंगे ! जगन, मारो साले को।'

'देखा जगन, तुम्हें बचाने का यह इनाम !'

'नहीं मिर्ज़ा ! तुम रमज़ान को नहीं मार सकते।'

मिर्ज़ा की फटी पुरानी और गंदी शेरवानी खाट के पाये में अटक गई थी, आगे बढ़े तो गिर पड़े। रमज़ान और जगन ने लपककर उन्हें उठाया। झाड़ा-पोंछा, फिर पूछा कि उनके कहीं चोट तो नहीं आई।

मिर्ज़ा बोले—'चोट साली क्या आ सकती है, मैं लोहे का बना हुआ हूँ।'

जगन बोला—'हाय, हाय ! कैसी हिम्मत है तुममें मिर्ज़ा। अपना ज़माना होता तो सौ लौंडियाँ इस वक़्त ख़िदमत को दौड़ पड़तीं। दूकानें बन्द हो जातीं इस साले लखनऊ शहर में और नवाब वाजिदअली शाह साहब ख़ुद दौड़कर आते कि हुज़ूर मिर्ज़ा साहब के दुश्मनों को क्या हो गया है।'

'अब काहे का ज़माना रह गया है भैया ! कुछ नहीं, सब धोखा है प्यारे ! तुम्हारे जेब में चने हैं थोड़े ?'

'नहीं मिर्ज़ा !'

'तुम्हारे पास हैं ?'

'ख़तम हो गये।'

'या ख़ुदा ! मेरी शेरवानी भी फट गई। अभी कल ही ख़रीदी थी।'

'उसकी मरज़ी है मिर्ज़ा ! वर्ना मुरीदी जैसी शेरनी लट जाती ! अरे, शहर में गोश्त की दूकानें लुटवा देता !' रमज़ान बोला।

'शेरनी नहीं मेरे भैया—शेरवानी !'

'शेरवानी ? फ़रीदी ? लट गई ? अमाँ तुम नशे में हो मिर्ज़ा !'

'मैं ठीक कहता हूँ।'

'क्या ठीक कहते हो, अपना सर ?'

'सर नहीं प्यारे ! शेरवानी।'

'ओह, अब मैं समझा।' रमज़ानी ने जगन के बिलकुल पास खिसककर कहा—'मिर्ज़ा झूठ कहते हैं भैया ! अब शेरवानियाँ कहाँ रक्खी हैं, अब तो गीदड़वानियों का ज़माना आ गया।' और जगन हँस पड़ा। मिर्ज़ा फिर खाट पर बैठ गये। कहा—'लो जगन एक पुड़िया तुम भी निकालो !'

जगन ने अंटी खोली।

Durga Sah Municipal Library,
Naini Tal.
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल